कुरुक्षेत्र

जनपथ के राही

कुरुक्षेत्र

सामुदायिक विकास-योजना प्रशासन का मासिक मुखपत्र

वर्ष १] म ई १ ९ ५ ६ [अंक ७

विषय-सूची

आवरण चित्र [कलाकार : सुशील सरकार]		
अध्ययन-यात्रा ! [व्यंग्य-चित्र]	संमुअल	२
महात्मा बुद्ध का सन्देश	इन्द्र विद्यावाचस्पति	३
चीन में दस लाख सहकारी फार्म	चेन हान-सेंग	६
कोरापुट में सर्वस्व दान	...	१०
प्रोजैक्ट आफ़िसर की दावत [कहानी]	सुशील वर्मा	१२
हमारा सहकारी आन्दोलन	चित्रावली	१५-१८
एक सच्ची घटना	देवनारायण राम	१९
समाज शिक्षा के तत्त्व	के० एम० पणिक्कर	२३
बड़ा परिवार एक बोझ	सावित्रीदेवी वर्मा	२८
प्रगति के पथ पर	...	३१

सम्पादक :

केशवगोपाल निगम

[सहकारी सम्पादक प्रकाशन विभाग]

उप-सम्पादक : *मनोहर जुनेजा*

मुख्य कार्यालय
ओल्ड सेक्रेटेरिएट,
दिल्ली—८

वार्षिक चन्दा २॥)
एक प्रति का मूल्य ।)

विज्ञापन के लिए
बिज़नेस मैनेजर, पब्लिकेशन्स डिवीज़न
दिल्ली—८ को लिखें

अध्ययन-यात्रा !

नेशनल केडेट कोर के लड़के गाँव की सड़क बना दें,

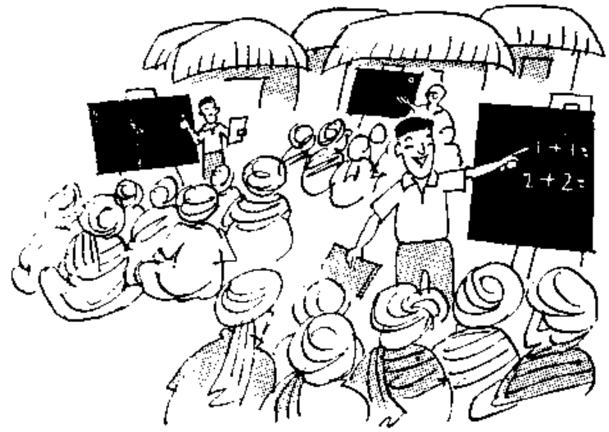

विश्वविद्यालय के छात्र समाज सेवा शिविर चलाते रहें,

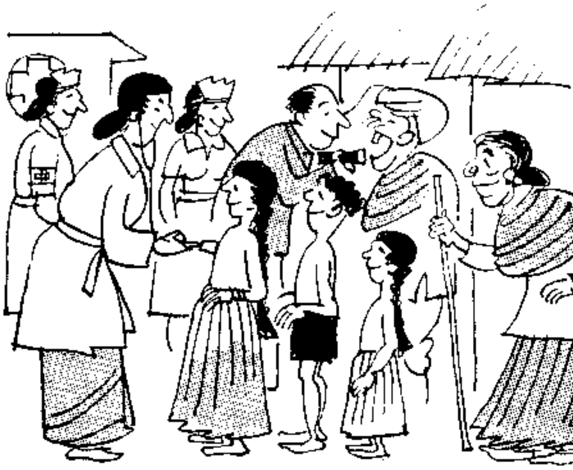

स्वास्थ्य यूनिट सेवा करने में कोई कसर न छोड़ें,

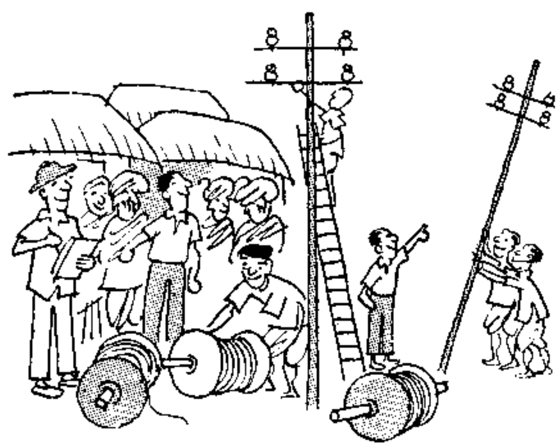

विकास कार्यक्रम गाँव को

बिजली से जगमगा दें, और

समाज कार्यकर्त्ता मुफ्त सेवा करते रहें —

परन्तु गाँववालों को इन सबसे ज्यादा

आनन्द अध्ययन-यात्रा में आता है ।

महात्मा बुद्ध का सन्देश

इन्द्र विद्यावाचस्पति

चिकित्सक के औषधालय में सभी रोगों के औषध रखे रहते हैं। चिकित्सक को वे सब सदा याद नहीं आते। जब जिस दवा की आवश्यकता होती है, योग्य चिकित्सक का हाथ उस समय उसी पर जाता है। यह मनुष्य का स्वभाव है। कहने को वह कितना ही आदर्शवादी बने परन्तु वस्तुतः वह किसी विशेष समय में उसी को आदर्श मान लेता है जो उसके लिए उपयोगी है। सत्य और अहिंसा की प्रशंसा केवल भारत में ही नहीं अपितु सारे संसार में अनादि काल से होती रही है। भारत का तो सम्पूर्ण धर्मशास्त्र ही इन दो गुणों की महिमा से भरा पड़ा है। परन्तु सत्य और अहिंसा का जैसा गुणगान गत तीस वर्षों में हुआ है वैसा सदियों से नहीं हुआ था। इसका कारण स्पष्ट है। महात्मा गान्धी से पूर्व संसारी लोग सत्य और अहिंसा को ऊँचे दर्जे का धर्म, योग के साधन अथवा निष्काम कर्म के अंग मान कर मनन और श्रवण का विषय समझा करते थे। महात्मा गान्धी ने उन्हें वर्तमान भारत के सबसे बड़े रोग विदेशी राज्य के नष्ट करने का साधन बना कर उपयोगी सिद्ध कर दिया। यह देख कर भारतवासियों को बड़ा आनन्द हुआ कि सत्य और अहिंसा जैसे प्राचीन धर्म स्वराज्य प्राप्ति के साधन भी बन सकते हैं। इस पर **'सत्यमेव जयते नानृतम्'** और **'अहिंसा परमो धर्मः'** जैसे वाक्य जो प्रायः अंग्रेज़ी पुस्तकों के ढेरों के नीचे दब गए थे, निकाल कर दीवारों पर चिपकाए जाने लगे। यह अनुभव सिद्ध बात है कि मनुष्य आदर्शवाद की दुन्दुभि बजाता हुआ भी अन्दर से उपयोगितावादी बना रहता है।

जिस समय महात्मा बुद्ध ने भारत में जन्म लिया उस समय यह देश अनेक धार्मिक और सामाजिक रोगों से बुरी तरह ग्रस्त था। धर्म केवल रूढ़ियों के रूप में अवशिष्ट था। तपस्वी और ब्राह्मण वे लोग कहलाते थे जो जटाएँ धारण कर के अथवा भस्म रमा कर कर्मशून्य जीवन व्यतीत करने लगते थे। शीतकाल में ठंडे जल में खड़ा होना अथवा गर्मियों में जलती आग सेंकना तप कहलाता था। यज्ञों में पशुओं की बलि देना धर्म का उत्तम अंग माना जाता था। भारतीय समाज ऐसी धार्मिक दुर्दशा में ग्रस्त था जब महात्मा बुद्ध ने कपिलवस्तु में जन्म लिया। वह जब सब कुछ देखने और विचारने के योग्य हुए तो उन्होंने अनुभव किया कि जिसे लोग धर्म मान रहे हैं वह धर्म का केवल बाह्य आवरण है और आवरण भी बहुत बिगड़ा हुआ। उनके हृदय में सच्चा धर्म जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई जो राजमहलों से निकाल कर राजकुमार सिद्धार्थ को जंगलों में ले गई। कुछ समय तक सिद्धार्थ ने उस समय के प्रचलित तप और धर्म के प्रयोगों का परीक्षण किया। जब देखा कि बाहर की भागदौड़ से न सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ और न ही मन को शान्ति मिली तब सच्चे जिज्ञासु ने अपनी आँखें अन्तरात्मा में लगाईं। जो वस्तु वर्षों की भागदौड़ से न मिली वह अन्तर्दृष्टि होकर ध्यान लगाने से दिनों में प्राप्त हो गई। वह घोर शारीरिक तपस्याओं और रूढ़ियों से निराश होकर निरंजना नदी के तट पर एक पीपल के पेड़ के नीचे ध्यानावस्थित होकर बैठ गए और सच्चे मार्ग का अन्वेषण करने लगे। प्रभात होते-होते उन्हें अन्दर से वह प्रकाश मिल गया जिसकी तलाश में वह घर से निकले थे। उन्हों ने जान लिया कि असली धर्म सच्चे और अच्छे जीवन के व्यतीत

करने में हैं, शरीर को तपाने अथवा यज्ञों में पशुओं का बलिदान देने में नहीं। उस समय राजकुमार सिद्धार्थ **'बुद्ध'** अर्थात् यथार्थज्ञानी पद का अधिकारी हो गया।

गौतम बुद्ध ने जिस रूप में धर्म का अनुभव किया वह **धम्मपद** के इन श्लोकों से प्रकट होता है—

न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति।
यो च अप्पम्पि सुत्वान धम्मं कायेन पस्सति
स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति।

—'बहुत बोलने से धर्मधर नहीं होता, जो थोड़ा भी सुन कर शरीर से धर्म का आचरण करता है, और जो धर्म में असावधानी नहीं करता, वही धर्मधर है।'

यम्हि सच्चंच धम्मो च अहिंसा संजमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो ति पवुच्चति॥

—'जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और **दम** है, वही **विगतमल, धीर और स्थविर** कहा जाता है।'

न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं।
इच्छालाभसमापन्नो समणो किं भविस्सति॥

—'केवल सिर मुँडाने से कोई **श्रमण** नहीं हो सकता। जो मिथ्या बोलता है और सांसारिक लाभ की इच्छा रखता है वह श्रमण कैसे कहला सकता है।'

श्रमण कौन है, इस प्रश्न का उत्तर महात्मा बुद्ध ने निम्नलिखित दिया—

जो यहाँ पुण्य और पाप को छोड़ ब्रह्मचारी बन, ज्ञान के साथ लोक में **विचरता** है, वह भिक्षु कहा जाता है।

उस समय धर्म अपने विशुद्ध रूप को छोड़ कर रूढ़ि रूपी कंकाल मात्र दृष्टिगोचर हो रहा था। लोभी भिक्षु और अज्ञानी ब्राह्मणों की प्रमुखता के कारण प्रजा **विपरीत** मार्ग पर चल कर दुःख उठा रही थी। महात्मा बुद्ध के इन उपदेशों ने उन्हें बहुत शान्ति प्रदान की। आत्मिक प्यास के सताए हुए लोगों को मानो अमृतपान कराया।

देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। राजा लोग मुख्य रूप से दो ही काम जानते थे। या तो राज्य के **वैभव** का उपभोग करते थे अथवा राज्य की सीमाओं को बढ़ाने के लिए एक दूसरे से युद्ध करते थे। युद्धों के कारण राजाओं और राजवंशों में वैर की भावना पैदा हो जाती थी जो चिरकाल तक पड़ोसियों को शत्रु बनाए रखती थी। राजाओं की परस्पर लड़ाई में प्रजा बरबाद होती थी। इस प्रकार राजकार्य प्रजा की अशान्ति का कारण बन रहा था। महात्मा बुद्ध ने इस कष्ट के निवारण का निम्नलिखित उपाय बतलाया—

नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥

—'यहाँ वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता, अवैर से ही शान्त होता है, यही सनातन धर्म है।'

यज्ञों में पशुओं की बलि देना धर्म का काम समझा जाता था। राजा लोग देवताओं को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभी सैंकड़ों गौओं तक का वध कर डालते थे। महात्मा बुद्ध ने उन्हें बताया कि

> **जैसा मैं हूँ, वैसे ही वे हैं, और जैसे वे हैं वैसा ही मैं हूँ। इस प्रकार अपने उदाहरण से सबको समझकर न किसी को मारे और न मारने की प्रेरणा दे।**
>
> **पहले तीन ही रोग थे, इच्छा, क्षुधा और बुढ़ापा, पशु की हिंसा प्रारम्भ होने पर वे ६८ हो गए। यह याजक, यह पुरोहित निर्दोष पशुओं का वध कराते हैं, धर्म का ध्वंस करते हैं। यज्ञ के नाम पर की गई यह पशु हिंसा निश्चय ही निन्दित और नीच कर्म है।**

इस प्रकार के अन्य उपदेशों द्वारा भी महात्मा बुद्ध ने लोगों को अहिंसा का उपदेश दिया और यज्ञों में पशुवध की विशेष रूप से निन्दा की। जिस धर्म को भिक्षु और ब्राह्मण लोग बहुत से आवरणों में और क्रियाकलाप में छुपाकर जनता के सामने उपस्थित करते थे उसे बुद्ध ने अत्ययन्त सरल शब्दों में **'आर्य-सत्य-चतुष्टय'** के रूप में प्रकट किया। वह आर्यसत्य चतुष्टय निम्नलिखित है—

१. **पहला आर्यसत्य—संसार में दुःख है। जन्म में, जरा में, मृत्यु में, अप्रिय के मिलने में और प्रिय के वियोग में दुःख ही दुःख है।**
२. **दूसरा आर्यसत्य—दुःख का मूल कारण तृष्णा है। रात-दिन बढ़ती हुई अभिलाषा ही दुःखों को उत्पन्न करती है।**
३. **तीसरा आर्यसत्य—मनुष्य दुःख से छूटना चाहता है।**
४. **चौथा आर्यसत्य—दुःख से छूटने का उपाय अष्टांग मार्ग है। वह अष्टांग मार्ग यह है, सत्यदृष्टि, सत्यसंकल्प, सत्यवचन, सत्यकर्म, सत्य आजीविका, सत्यव्यायाम, सत्यस्मृति, 'अनुभव' सत्य समाधि।**

यह था व्यावहारिक और सरल धर्म जो महात्मा बुद्ध ने मिथ्या ज्ञान और हिंसापूर्ण कर्मकाण्ड के सताए हुए मनुष्यों को बतलाया। मनुष्य धर्म के नाम पर रूढ़ियों को मानते और उनके अनुसार आचरण करते हुए भी हृदयों में अशान्ति का अनुभव करते थे। उन्हें अपनी अन्तरात्मा में धर्म का स्थान खाली मालूम होता था। जब महात्मा बुद्ध ने उन्हें धर्म का सरल और सीधा मार्ग बतलाया तब उसे ग्रहण करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। राजा और प्रजा दोनों उसकी ओर आकृष्ट होने लगे और थोड़े

ही समय में बुद्ध का सन्देश देशव्यापी हो गया।

महात्मा बुद्ध के प्रचार से लगभग १०० वर्ष बाद उनके उपदेश एशिया के बड़े भाग में पहुँच चुके थे। महाराज अशोक के प्रयत्न से भिक्षुओं और प्रचारकों के दलों ने दक्षिण और पूर्व के देशों में तथागत के व्यावहारिक धर्म का प्रचार कर दिया था। उस प्रचार को ऐसी असाधारण सफलता मिली, इसका कारण भी यही था कि मनुष्य समाज केवल रीति-रिवाज में आस्था रखने वाले धर्माधारियों से तंग आ चुका था। उन्हें ऐसे उपदेश की आवश्यकता थी जो आत्मा को सन्तोष दे सके। महात्मा बुद्ध के उपदेश मनुष्य को रूढ़ियों से ऊपर उठाकर व्यावहारिक धर्म की प्रेरणा देने वाले थे। लोग लड़ाई झगड़े और ईर्ष्या द्वेष से परेशान थे। बुद्ध ने उन्हें शान्ति का मार्ग दिखलाया, मानो भूखे को अन्न मिल गया। मनुष्य जाति के बड़े भाग ने बौद्ध धर्म को अंगीकार कर लिया।

आज हम फिर मनुष्य जाति को महात्मा बुद्ध का स्मरण करता हुआ पाते हैं। मनुष्य रोगी होकर ही वैद्य को याद करता है। इस समय संसार के सभ्य कहलानेवाले देशों की जो दशा है उसकी यदि सन्निपात के रोगी से उपमा दें तो अनुचित न होगा। कहा जाता है कि यह उन्नति का युग है। उन्नति का प्रमाण यह दिया जाता है कि मनुष्य जाति ने विज्ञान की सहायता से बहुत बड़ी मात्रा में सुख के साधन उत्पन्न कर लिए हैं। यह तो ठीक है कि विज्ञान ने मनुष्यों की साधन सम्पन्नता को बहुत बढ़ा दिया है, परन्तु यह ठीक नहीं है कि उस साधन सम्पन्नता से मनुष्यों के सुख या सन्तोष में वृद्धि हुई है। यदि गम्भीर दृष्टि से सभ्य कहलानेवाली जातियों की मानसिक दशा का निरीक्षण करें तो हम इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि वस्तुतः ज्यों-ज्यों विज्ञान की सहायता से मनुष्यों की साधन सम्पन्नता बढ़ती गई है, त्यों-त्यों व्यक्ति और समाज की मानसिक बेचैनी में वृद्धि होती गई है। असन्तोष की मात्रा भी निरन्तर बढ़ती गई है। आजकल के विचारक यह दावा करते हैं कि नवीन युग हेतुवाद में विश्वास रखता है, वह रूढ़ियों का शत्रु है। वर्तमान विचारकों का यह दावा स्वयं एक बहुत ही भद्दी रूढ़ि से अधिक कीमत नहीं रखता। रूढ़ियों का रूप बदल गया है, परन्तु पश्चिम के दिमाग पर आज भी नई रूढ़ियों का वैसा ही साम्राज्य है जैसा आज से २५०० वर्ष-पहले पूर्व के निवासियों के दिमाग पर था। ईसाइयत हो या कम्युनिज्म वह स्वयं उन्हीं बीमारियों के शिकार हैं जिनसे मनुष्यों को निकालने का वह दावा करते हैं।

शान्ति के प्रचारक ईसाई मत के अनुयायी अशान्ति के अग्रदूत और मसीहा बने हुए हैं। विज्ञान और शिल्प की सारी शक्ति लगाकर अमेरिका और यूरोप के देश और उनके अनुकरण में बहुत से अन्य देश भी एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए युद्ध की घातक सामग्री तैयार करने में व्यस्त हैं। २५०० वर्ष पूर्व वे लोग अदृश्य देवताओं की तृप्ति के लिए पशुओं की हिंसा किया करते थे, आज उन्नति के अभिमानी लोग अपनी महत्वाकांक्षाओं की बलिवेदी पर मनुष्यों की भेंट चढ़ाने के लिए दिन रात प्रयत्नशील हैं।

कुछ समय से मनुष्य फिर से महात्मा बुद्ध को स्मरण करने लगा है। कारण स्पष्ट है। जब रोग वैसा ही है तो उपचार भी वैसा ही चाहिए और वैद्य भी वही चाहिए जो रोग की चिकित्सा कर सके। आज फिर मनुष्य जाति को महात्मा बुद्ध के उस अमृतमय उपदेश को हृदयंगत करने की आवश्यकता है जो उन्होंने अपने शिष्यों को दिया था। उपदेश यह था—

सब्ब पापस्स अकरणं
कुसलस्स उपसंपदा,
सचित परियोदपनं
एतं बुद्धान सासनं।

—'सारे पापों का न करना, 'कुशलधर्मों' अर्थात् पुण्यों का संचय करना, और अपना चित्त परिशुद्ध रखना, यही बुद्धों की शिक्षा है।'

बुद्धों की यह शिक्षा है—

१. **निन्दा न करना।**
२. **हिंसा न करना।**
३. **आचार नियम द्वारा अपने को संयत रखना।**
४. **मित भोजन करना**
५. **एकान्त में वास करना।**
६. **चित्त को योग में लगाना।**

महात्मा बुद्ध ने यह प्रचार पण्डितों की भाषा संस्कृत को छोड़ कर लोक भाषा में किया, इस कारण उनके विचार जनता में वायु की तरह फैल गए। जैसे आज से २५ शताब्दी पहले उन विचारों से जनता का कल्याण हुआ, वैसे अब भी हो सकता है।

★

चीन में दस लाख सहकारी फार्म

चेन हान-सेंग

पिछले वर्ष की शरद ऋतु में केवल एक सौ दिनों में चीन में ५,६०,००० नई कृषि सहकारी समितियों की स्थापना की गई। इस वृद्धि के फलस्वरूप अब वहाँ ऐसी लगभग साढ़े बारह लाख समितियाँ हो गई हैं। कृषि-उत्पादन के क्षेत्र में सहकारिता आन्दोलन सन् १९५१ में आरम्भ किया गया था। तब से यह आन्दोलन उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। परन्तु जितनी वृद्धि पिछले वर्ष की शरद ऋतु के इन सौ दिनों में हुई उतनी पहले कभी नहीं हुई। सन् १९५१ में जब यह आन्दोलन शुरू किया गया, तो देश में कुल ३०० सहकारी फार्म थे। दो वर्ष पश्चात् सन् १९५३ के अन्त तक इनकी संख्या बढ़कर १४,००० हो गई थी। सन् १९५५ की गर्मियों तक देश में ६,५०,००० सहकारी फार्मों की स्थापना की जा चुकी थी, जिनके सदस्य लगभग १ करोड़ ७० लाख किसान परिवार थे। चीन में समाजवाद की स्थापना के लिए जो आन्दोलन हो रहा है, यह उसका एक महत्वपूर्ण अंग है।

सन् १९५२ में भूमि-व्यवस्था में जो सुधार हुआ उसके फलस्वरूप भूमि किसानों में बाँट दी गई। अधिकतर भूमिहीन किसान भूमि के मालिक बन गए। भूमि के पुनर्विभाजन के फलस्वरूप किसानों के हिस्से में भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े आए थे। इन टुकड़ों की खेती सिर्फ़ छोटे-छोटे दस्ती औज़ारों से हो सकती थी। अगर इनकी खेती इसी ढंग से होती रहती, तो उपज में वृद्धि होने की कोई सम्भावना नहीं थी। इसके विपरीत कारखानों की संख्या बढ़ती जा रही थी। नए-नए कारखाने खुल रहे थे, जिनके लिए कच्चे माल की बेहद आवश्यकता थी। जब तक उपज में वृद्धि नहीं होती, इन कारखानों के लिए कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सकता था। ट्रैक्टरों और खेती के काम आने वाली अन्य मशीनों को ऐसी स्थिति में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था हालांकि देश में उनका निर्माण निरन्तर बढ़ रहा था। नगरों में तैयार होनेवाली वस्तुओं में वृद्धि हो रही थी, परन्तु किसानों की आय वैसी की वैसी थी। उनकी क्रय-शक्ति इतनी नहीं थी कि नगरों में तैयार होने वाली वस्तुओं को खरीद सकें।

समाजवादी योजना तभी सफल होती है जब सारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को सामने रखकर योजना बनाई जाए। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न अंगों का समन्वय अत्यावश्यक है। अगर कृषि की व्यवस्था ठीक नहीं है तो उत्पादन में वृद्धि कठिन हो जाएगी--फलतः औद्योगीकरण भी खटाई में पड़ जाएगा।

चीन की इस समस्या का हल है किसानों की सहकारी समितियाँ। इनसे खेत भी बड़े हो जाते हैं और किसानों का श्रम और साधन भी एकत्र हो जाते हैं। इस तरह आधुनिक ढंग की मशीनों का प्रयोग हो सकता है, जिससे उपज में वृद्धि होती है। अगर ठीक प्रकार से व्यवस्था की जाए तो औद्योगीकरण, सहकारी फार्म और कृषि का विकास--तीनों चीज़ों का चोली-दामन का साथ रहता है। हमारी पहली पंचवर्षीय योजना का आधार है देश में समाजवादी ढंग से उद्योगों की स्थापना और औद्योगीकरण का आधार है सहकारी फार्मों की स्थापना।

सामूहिक खेती या पूर्णतया समाजवादी कृषि में प्रगति तीन चरणों में होती है।

आरम्भ में कुछ किसान परिवार आपसी-सहायता दलों की स्थापना करते हैं। इस दल के सदस्य परिवार अपना श्रम, अपने पशु और कृषि-सम्बन्धी औज़ार कुछ नियत समय तक मिलकर काम करने के लिए जुटाते हैं। यह नियत समय अधिक भी हो सकता है और कम भी। भूमि उनकी अलग-अलग रहती है और हर अन्य चीज़ भी अलग ही रहती है। ऐसी कोई चीज़ नहीं होती जो साझे की हो। आपसी-सहायता दलों के प्रयासों से प्रति एकड़ उपज में तब की अपेक्षा वृद्धि होती है, जब वे किसान अलग व्यक्तिगत रूप से काम करते थे।

इसके बाद अधिक स्थायी और संगठित कृषि सहकारी समितियों का नम्बर आता है, परन्तु तब भी भूमि सदस्यों की निजी मिल्कियत रहती है। कुछ साज-सज्जा साझी होती है। जैसा कि तथ्यों से स्पष्ट है इस अवस्था में पहली अवस्था (आपसी-सहायता दलों का निर्माण) की अपेक्षा अधिक उपज होती है। उपज से प्राप्त होनेवाली आय भूमि और श्रम आदि को ध्यान में रखकर बाँटी जाती है। यह रूप अर्ध-समाजवादी है।

ज्यों-ज्यों उपज बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों श्रम की आय में भी वृद्धि होती है। इस तरह भूमि के नियत भाड़े का अपेक्षाकृत महत्व घटता जाता है। इससे तीसरी सीढ़ी पर पहुँचने का रास्ता खुल जाता है। यह तीसरी सीढ़ी है सामूहिक फार्मों की स्थापना। सामूहिक फार्मों का मतलब है पूर्णतया समाजवादी ढंग के सहकारी फार्म, जिनमें भूमि का स्वामित्व अलग-अलग न होकर सामूहिक होता है।

चीन में आजकल उपरोक्त तीनों प्रकार की कृषि समितियाँ विद्यमान हैं। लेकिन तीनों में से दूसरे (अर्ध समाजवादी) प्रकार की कृषि सहकारी समितियों पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है। सारे विकास-कार्य का इन्हें ही केन्द्र-बिन्दु कहा जा सकता है।

इस प्रकार की समितियों की सफलता के लिए तीन बातों का होना आवश्यक है। (१) इन समितियों की उपज आपसी-सहायता दलों या निजी कृषि की अपेक्षा अधिक हो। (२) उपज से प्राप्त होने वाली आय का वितरण उचित ढंग से हो। (३) नेतृत्व अच्छा हो। उसमें प्रबन्ध करने और समस्याओं का हल निकालने की योग्यता प्रचुर मात्रा में हो।

पहली चीज़ है उपज। एक सहकारी फार्म में औज़ारों, पशुओं, खाद और सदस्य परिवारों के श्रम को एक स्थान पर जुटाया जाता है और भूमि को एक इकाई मानकर प्रबन्ध किया जाता है। इस लिए सुधरे हुए औज़ार इस्तेमाल करने से पहले की अपेक्षा उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होनी शुरू हो जाती है। बहुत-सी समितियों ने पुराने हल छोड़कर नए हल खरीद लिए हैं। जब फार्मों का क्षेत्रफल और भी बड़ा हो जाएगा और ट्रैक्टर और अन्य मशीनें लोकप्रिय हो जाएँगी, उपज में और भी वृद्धि होगी।

हाल ही में दक्षिणी कियांगसू प्रान्त का दौरा करते हुए मुझे पहले-पहल सहकारिता से प्राप्त होने वाले फल का आभास मिला। सूनो के समीप सन् १६५४ में २६ किसान परिवारों ने मिलकर एक सहकारी फार्म की स्थापना की थी। सहकारी फार्म का सदस्य बनने से पूर्व किसान प्रति एकड़ ४ बुशल गेहूँ पैदा कर पाते थे। पहली सहकारी फसल ५.५ बुशल गेहूँ प्रति एकड़ रही, दूसरी सन् १६५५ में बढ़कर ११ बुशल हो गई। इस क्षेत्र की मुख्य फ़सल चावल है। जब किसान लोग अलग-अलग खेती करते थे तो चावल की उपज ५७.६ बुशल प्रति एकड़ थी। आपसी-सहायता दल में मिलकर काम करने पर उपज बढ़कर ६५ बुशल प्रति एकड़ हो गई और सहकारी फार्म की स्थापना पर यह ७६.२ बुशल हो गई। इस सफलता से आकर्षित होकर सदस्यता के इच्छुक परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही है। इस समय सदस्य परिवारों की संख्या ५२ है।

वूसीह के समीप 'मई दिवस' सहकारी फार्म की सदस्यता एक ही वर्ष मे इसी कारण ३१ से बढ़कर ४५ हो गई। इस क्षेत्र के किसानों की चावल की औसत उपज आरम्भ में ५४ बुशल प्रति एकड़ थी। सन् १६५५ में औसत उपज बढ़कर ६६ बुशल हो गई। गेहूँ की उपज तो उर्वरकों और कृषि पद्धति में सुधार के फलस्वरूप और भी अधिक बढ़ी—प्रति एकड़ उपज ८.८ बुशल से बढ़कर २२ बुशल हो गई। यह सब प्रतिकूल स्थिति के बावजूद हुआ, क्योंकि कुछ फसल बाढ़ और रोग के कारण नष्ट भी हो गई थी।

नांकिंग से कुछ मील की दूरी पर पेंगस्टन सहकारी फार्म है। दो वर्षों में इस की सदस्यता १७ परिवारों से बढ़कर ४७ तक पहुँच गई। अब ८० प्रतिशत गाँववाले इसके सदस्य हैं। यहाँ भी सहकारिता के फलस्वरूप उपज में काफ़ी वृद्धि हुई है। आरम्भ में किसानों की चावल की औसत उपज प्रति एकड़ ३८.४ बुशल थी। आपसी-सहायता दल के फलस्वरूप उपज ४६.८ बुशल प्रति एकड़ हो गई। सन् १६५४ में ५०.४ बुशल और १६५५ में ५४.७ बुशल हो गई।

अधिक उपज का अर्थ है सदस्यों की आय में वृद्धि। आय का वितरण लोकहित को सामने रखते हुए लोकतन्त्री ढंग से होना चाहिए। वितरण निर्दोष होना चाहिए अन्यथा समिति में फूट पड़ने की आशंका रहेगी जो प्रगति के रास्ते में बाधक होगी।

इस दशा में सबसे महत्वपूर्ण समस्या, जिसका हमें सामना करना पड़ता है, श्रम के अनुसार वेतन नियत करना है। वेतन क्योंकि श्रम के अनुसार दिया जाता है, इसलिए श्रम मापने की पद्धति को अपनाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त भी वेतन नियत करते समय, कई बातों को ध्यान में रखा जाता है। इनमें से कई

चीन के एक सहकारी फार्म का दृश्य

का सर्व-मान्य फैसला करना लगभग असम्भव होता है।

खेती के छोटे औज़ार सदस्यों के पास रहते हैं और वे ही इन्हें इस्तेमाल करते हैं। मझोले औज़ार साझे में इस्तेमाल होते हैं और समिति के पास रहते हैं। बड़े औज़ार भाड़े पर मिलते हैं और खरीदे भी जा सकते हैं। औज़ारों आदि की मरम्मत, भाड़े और किसी वस्तु को खरीदने के लिए दाम देना अनिवार्य होता है। खेती के काम में आने वाले पशुओं जैसे घोड़े, गधे, बैल और भैंस आदि से काम लेते समय या उन्हें खरीदने के लिए भी दाम देने पड़ते हैं।

अन्त में सबसे महत्वपूर्ण समस्या का सामना करना पड़ता है। यह समस्या है उपज के एक भाग का भूमि देनेवालों में, उनकी भूमि के क्षेत्रफल के अनुसार वितरण। कुल उपज में भूमि का योगदान आँकते समय प्रत्येक भू-खण्ड के उपजाऊपन, उससे प्राप्त होने वाली फसल की मात्रा, उसका स्थान और उस पर खेती करने में कितने श्रम की आवश्यकता होती है, इत्यादि बातों को ध्यान में रखा जाता है।

ग्राम्य चीन में लगभग सभी लोग अब 'सूपिंग' शब्द का अर्थ जानते हैं। इसका अर्थ है 'चार मूल्यांकन'। समिति के सदस्य सहकारी फार्म के लिए चार प्रकार का योगदान देते हैं। श्रम, औज़ारों, पशुओं और भूमि के रूप में। इनमें से प्रत्येक योगदान के लिए हर सदस्य को कितनी आय मिलनी चाहिए, इसी चीज़ के मूल्यांकन को 'सूपिंग' कहते हैं। जहाँ इस सिद्धान्त को अच्छी प्रकार लागू किया जाता है, उपज में वृद्धि होती है और समिति अधिक समृद्ध हो जाती है। अन्यथा मन-मुटाव और झगड़ेबाज़ी होती है, जिससे समिति के भंग होने की आशंका रहती है।

सहकारी समितियाँ ऐच्छिक संस्थाएँ होती हैं। वे केवल एक सिद्धान्त के अनुसार ही चल सकती हैं—वह है समता और आपसी हित का सिद्धान्त। अगर पशुओं और औज़ारों का मूल्य अथवा भाड़ा बहुत अधिक नियत किया जाए, तो अधिक समृद्ध सदस्यों को लाभ पहुँचता है क्योंकि समृद्ध परिवार ही यह चीज़ें जुटा सकते हैं। इसके विपरीत इनके अधिक मूल्य अथवा भाड़े का अर्थ है समिति को हानि जिसमें दरिद्र परिवार बराबरी के भागीदार होते हैं। फलस्वरूप इससे जो समृद्ध हैं अधिक समृद्ध हो जाते हैं और जो दरिद्र हैं, पहले से भी दरिद्र हो जाते हैं। परन्तु अगर इसके विपरीत मूल्य अथवा भाड़े की दर कम रहती है तो इनके मालिक समिति को छोड़ने की सोचेंगे। इसी प्रकार भूमि और श्रम का मूल्य भी सोच समझकर नियत किया जाए—तभी उन लोगों में, जो भूमि जुटाते हैं और उनमें जो केवल श्रम ही जुटाते हैं, ताल-मेल बना रहेगा। इस लिए समिति की सफलता के लिए आवश्यक है कि हर वस्तु का मूल्यांकन सोच-समझकर उचित ढंग से किया जाए और जहाँ तक सम्भव हो सबको मान्य हो।

इन 'चार मूल्यों' के निर्धारण के लिए समिति को बहुत कुछ करना पड़ता है। आरम्भ में एक अल्पकालीन उपज योजना बनाई जाती है और कुछ सदस्यों को आरम्भिक अनुमान लगाने का काम सौंपा जाता है। तब समिति के नेता और कर्मठ सदस्य प्राप्त होने वाले अनुभव के आधार पर नियम बनाते हैं जिनका सदस्यों में प्रचार किया जाता है। इसके पश्चात् भूमि, सदस्यों और उनके कौशल, औज़ारों और पशुओं के बारे में पूरा विवरण रजिस्टरों में दर्ज किया जाता है। एक मूल्यांकन परिषद् का भी चुनाव किया जाता है। इस प्रकार समिति के नेता हर सदस्य के योगदान का मूल्यांकन निर्धारित स्तर के अनुसार करके अपने निर्णय एक सूची में दर्ज कर लेते हैं जिन्हें बहस और संशोधन के लिए पेश किया जाता है।

इस कार्य में आरम्भ से अन्त तक लोकतंत्री तरीकों को अपनाना आवश्यक है। मूल्यांकनों में दो या तीन बार तक संशोधन किया जा सकता है। मूल्यांकन परिषद् में सभी सदस्यों के प्रतिनिधियों का होना अनिवार्य है। समृद्ध और दरिद्र सदस्यों के प्रतिनिधि तो हों ही, स्त्रियों के भी प्रतिनिधि होने चाहिएँ।

समिति की सफलता के लिए अच्छे नेतृत्व का होना भी बहुत आवश्यक है। कोई भी किसान ऐसी किसी भी संस्था का सदस्य बनने के लिए तैयार नहीं होगा जिसके नेतृत्व में उसका विश्वास न हो। समाजवाद और लोक कल्याण के लिए निस्वार्थ भाव से निरन्तर प्रयास करने पर ही नेता लोग अन्य लोगों में यह विश्वास पैदा कर सकते हैं।

अच्छे नेताओं की माँग की पूर्ति करने के लिए कई सहकारिता व्यवस्थापकों को विशिष्ट प्रशिक्षण दिया गया। पिछले वर्ष अकेले होपई प्रान्त में एक लाख लोगों को यह प्रशिक्षण दिया गया। कुछ नेताओं को आपसी-सहायता दलों में काम करके भी काफी अनुभव प्राप्त हुआ है।

और सब चीजें अनुकूल होने पर भी अयोग्य नेतृत्व का समितियों पर भयानक प्रभाव पड़ता है। यह बात होपई के फेंग-जन प्रदेश के एक सहकारी फार्म के उदाहरण से सिद्ध हो जाती है। इस समिति की स्थापना सन् १९५२ में हुई थी और थोड़े ही समय में इसने काफी तरक्की भी कर ली। यह फार्म इतनी अधिक सफल रही कि इसे औरों के लिए आदर्श माना जाने लगा। परन्तु इस समिति का एक प्रधान समिति के सदस्यों की राय की बिलकुल परवाह नहीं करता था और मनमानी किया करता था। उसने समिति का पैसा ऐसे मदों पर लगाया जिनपर लगाना अनावश्यक था या जिन वस्तुओं पर कम से कम इस समय पैसा लगाने की आवश्यकता नहीं थी। उसने एक सभा भवन बनवा लिया और साइकलें खरीद डालीं। इन सबके लिए समिति को बैंक से काफ़ी रुपया ऋण लेना पड़ा जिसपर समिति को काफ़ी

ब्याज देना पड़ता था। इस ऊटपटांग रुपया लगाने का नतीजा यह निकला कि वह समिति जो आरम्भ में औरों के लिए आदर्श मानी गई थी, कुछ ही समय में भंग हो गई।

उसी प्रान्त की एक और सहकारी फार्म की कहानी बिलकुल इसके विपरीत है। इस समिति की स्थापना सन् १९५२ में हुई। उस समय २३ दरिद्र किसान परिवार इसके सदस्य थे। समिति के पास कुल ३८ एकड़ भूमि थी, परन्तु उस भूमि पर भी खेती करने के लिए उसके पास पर्याप्त औज़ार न थे। समिति के पास केवल एक गधा था और बैलगाड़ी कोई नहीं थी। पड़ोस के समृद्ध किसान गरीबों की इस समिति का मज़ाक उड़ाते थे और विश्वास के साथ कहा करते थे कि पैसे के अभाव में यह समिति अवश्य ही भंग हो जाएगी। लेकिन समिति का प्रधान समझदार था। उसने सही रास्ता पकड़ा। सर्दी के मौसम में खेती का कोई काम नहीं था। वह समिति के १७ सदस्यों को अपने साथ समीप की पहाड़ी पर ले गया। वहाँ से लकड़ियाँ काटकर ईंधन के रूप में बाजारों में बेची गईं। इस बीच स्त्रियों को स्थानीय निकाय के आधीन पुश्तों की मरम्मत करने का काम मिल गया। इन कार्यों से जो आमदनी हुई उससे समिति ने एक बैलगाड़ी, एक गाय, एक गधा, १९ भेड़ें और कुछ खेती करने के औज़ार खरीद लिए। जंगल से और लकड़ी काटी गई जिसको बेचकर खाद्यान्न, पशुओं के लिए चारा, कुछ और पशु तथा अन्य साज-सज्जा खरीदी गई। इस तरह समिति ने तंगी का समय काट दिया और वह चल निकली। १९५५ तक इसके सदस्यों की संख्या ६ गुणी से भी बढ़ गई थी। तब तक समिति ने काफ़ी बड़ा सुरक्षित कोष बना लिया था और अपने कुछ सदस्यों के लिए नए मकान भी बनवा दिए थे जिनमें कुल १४० कमरे थे।

मोटे तौर पर देखा जाए तो समितियों का नेतृत्व अच्छा ही रहा है और सुव्यवस्थित समितियों से प्रोत्साहन पाकर अन्य समितियों की स्थापना की गई है। फलस्वरूप यह आन्दोलन बहुत लोकप्रिय हो गया है। १९५५ के ग्रीष्मऋतु से पूर्व जो ६,५०,००० सहकारी फार्म थे उनमें से ८० प्रतिशत की औसत उपज उस क्षेत्र की औसत उपज से अधिक थी। यह अन्तर १० से ३० प्रतिशत तक था। काम करने की नई प्रणालियों को अपनाने में जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उनके बावजूद बाकी समितियों ने उपज के पुराने स्तर को बनाए रखा है। केवल ५ प्रतिशत समितियाँ ऐसी हैं जो ऐसा करने में भी असफल रही हैं। क्योंकि तथ्य खुद किसानों ने अपनी आँखों से देख लिए थे, उस वर्ष शरद ऋतु में ही समितियों की संख्या पहले से दुगुनी हो गई।

चीनी कृषि का समाजवादी पुनर्गठन एक अत्यधिक कठिन और पेचीदा मामला है। इसलिए (आश्चर्य की कोई बात नहीं!) कृषि सहकारी समितियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के फलस्वरूप स्थानीय नेताओं में दो प्रवृत्तियाँ पैदा हो गई हैं। कुछ लोग सफलता से इतने अधिक प्रभावित हुए हैं कि उनके सामने बस आगे बढ़ने ही का लक्ष्य है। उनके लिए संख्या ही अपने में महत्वपूर्ण हो गई है। उन्होंने प्राप्त होने वाले लाभों को संचित करने की आवश्यकता नहीं समझी। उन्होंने ऐसे स्वार्थी अमीर किसानों को भी समितियों में शामिल कर लिया जो वास्तव में इस आन्दोलन के विरुद्ध थे। इससे कुछ कठिनाइयों में वृद्धि हुई और कई समितियाँ असफल होकर बन्द हो गईं।

दूसरी प्रवृत्ति थी आवश्यकता से अधिक सतर्क रहने की। कुछ नेता यह समझते थे कि मामला आवश्यकता से अधिक तेज रफ्तार से आगे बढ़ रहा है; इसलिए इस रफ्तार में किसी प्रकार 'ब्रेक' लगाना आवश्यक है। आरम्भिक कठिनाइयों और समस्याओं का उन्हें इतना ख्याल था कि वे इस बात को बिलकुल भूल बैठे कि सहकारी समितियाँ अत्यधिक सफल हुई हैं और करोड़ों किसान इस काम को आगे बढ़ाने के इच्छुक हैं।

जुलाई १९५६ में साम्यवादी दल के कार्यकर्ताओं के एक सम्मेलन में भाषण देते हुए चेयरमैन माओत्से-तुंग ने आँकड़ों व तथ्यों के आधार पर कहा कि ६०-७० प्रतिशत किसान सहकारी फार्मों में शामिल होने को बेचैन हैं। इनमें से अधिकतर दरिद्र और मध्यम वर्ग के किसान हैं। २०-३० प्रतिशत किसान अपेक्षाकृत समृद्ध हैं। सहकारिता के प्रति उनका रुख अनिश्चित-सा है। इनमें से कुछ पूंजीवादी ढंग से खेती कर रहे हैं।

खेती में लगी हुई जनसंख्या का दसवाँ भाग काफी अमीर किसानों और भूतपूर्व ज़मींदारों का है। सामान्यतः इन लोगों को समितियों का सदस्य नहीं बनने दिया जाता, परन्तु उन क्षेत्रों में जहाँ ८०-९० प्रतिशत किसान सहकारी समितियों के सदस्य हैं और जिन क्षेत्रों में लोगों की सहकारिता के सिद्धान्तों में पूरी निष्ठा है, इन लोगों को भी समितियों की सदस्यता में शामिल कर लिया जाता है। अब तक प्राप्त हुए कड़ुवे अनुभव ने इनलोगों के प्रति ऐसा दृष्टिकोण आवश्यक बना दिया है। अक्सर यह लोग समिति के कार्यों के सक्रिय शत्रु बन जाते हैं और पुरानी व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं कि भूतपूर्व ज़मींदार भागकर दूरवर्ती प्रान्तों में जा बसे और गरीब किसान बनकर किसी सहकारी समिति के सदस्य बनकर इसको अपार क्षति पहुँचाई। पशुओं को विष दे दिया और इस प्रकार समिति में अस्तव्यस्तता और गतिरोध पैदा हो गया। कुछ अमीर किसानों ने समितियों में अपने लिए बहुत प्रभावशाली स्थान बना लिया है और अपने पैसे के बल पर समिति के अन्य सदस्यों का शोषण करने लगे हैं। यह लोग अन्य गरीब किसानों को समिति का सदस्य नहीं बनने देते और इस प्रकार सहकारिता का प्रमुख उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

कोरापुट में सर्वस्व दान !

उड़ीसा राज्य के एक ज़िले का नाम है कोरापुट। क्षेत्र की दृष्टि से तो यह ज़िला उड़ीसा में सबसे बड़ा है, लेकिन बेहद पिछड़ा होने के कारण अब तक प्रायः अज्ञात था। लेकिन पिछले वर्ष वहाँ जो भूमि-क्रान्ति हुई, उससे सारे देश की नज़रें इस अज्ञात ज़िले पर गईं और यह ज़िला अब भूमि-क्रान्ति का तीर्थ माना जाने लगा है।

घने जंगलों और पहाड़ों से घिरे कोरापुट में आवागमन अत्यधिक कठिन है। ऊँचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्तों में पैदल यात्रा ही की जा सकती है और इस पर भी हमेशा जंगली जानवरों का डर लगा रहता है। ज़िले में बसे लगभग १३ लाख लोगों में से पिछड़े वर्गों के लोगों की संख्या लगभग साढ़े १० लाख है। करीब ६ हज़ार गाँवों में से अधिकतर छोटे-छोटे ही हैं। खेती की स्थिति दयनीय है, सिंचाई के साधनों का नितान्त अभाव है बैल नहीं हैं, बीज नहीं हैं। इसी कारण उपज भी थोड़ी होती है। गरीबी, बीमारी, अशिक्षा, अभावों का केन्द्र कोरापुट अब तीर्थ बन गया है, यह कहानी कितनी अद्भुत है।

आचार्य विनोबा भावे

वैसे तो पहले ही भूदान कार्यकर्ता कोरापुट के गाँव-गाँव में भूदान का सन्देश पहुँचा रहे थे, लेकिन मई, १९५५ में विनोबा जी के सन्देश से ज़िले में क्रान्ति की लहर दौड़ गई। प्रार्थना सभा में कोरापुट निवासियों से समग्र ग्राम दान में देने की प्रार्थना करते हुए विनोबा जी ने कहा—"शहरों के लोग केवल अपना सोचते हैं, पड़ोसी का नहीं। पड़ोसी को खाने को मिला है या नहीं, उसके घर की हालत क्या है, यह बात कोई पूछता भी नहीं है। लेकिन हम गाँव के लोग तो प्रेम के लिए इकट्ठा रहते हैं। शहर के लोग एक दूसरे को लूटते हैं। हम गाँव वाले भी अगर एक दूसरे को लूटना शुरू कर दें तो हमारी हालत बुरी हो जाएगी। इसलिए हमलोगों को तय करना चाहिए कि अपने गाँव में हम सब मिलकर एक परिवार बनाकर प्रेम से रहेंगे। अपने पराए का भेद मिटा देंगे। मिल-जुलकर काम करेंगे और एक साथ खाएँगे-पिएँगे।"

तभी से ग्राम को परिवार बनाने का यह मंत्र कोरापुट के ग्राम-ग्राम में फैलने लगा। आज जब लोग सुनते हैं कि कोरापुट में सर्वस्वदानी ग्रामों की संख्या ६ सौ से भी अधिक है, तो उन्हें विश्वास नहीं होता। ६ सौ ग्रामों का अर्थ है ज़िले के १० प्रतिशत गाँवों का सर्वस्व दान। और अब पूरे ६ हज़ार ग्रामों को ग्रामदान आन्दोलन के अन्तर्गत लाने के लक्ष्य से काम किया जा रहा है।

कोरापुट के समग्रदान को विनोबा जी ने भूमि क्रान्ति का नाम देते हुए भूदान-यज्ञ का पाँचवाँ चरण बताया है। भूदान का पहला चरण था तेलंगाना में साढ़े चार वर्ष पूर्व वहाँ की विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए भूदान आन्दोलन का जन्म। दूसरा चरण था भूदान आन्दोलन को तेलंगाना के आतंकित क्षेत्र

से निकालकर सारे देश में व्यापक रूप में अपनाना। भूदान का तीसरा चरण उत्तर प्रदेश में ५ लाख एकड़ भूमि और भारत में २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित करना था। इसके पश्चात् यह निश्चय हुआ कि बिहार में कुल भूमि का छठा भाग प्राप्त करके भूमिहीनों में बाँट दिया जाए। ग्राम दान आन्दोलन भूदान आन्दोलन का पाँचवाँ और अन्तिम चरण है। अब गाँवों को परिवारों के समान बनाना है। गाँव को परिवार बनाते ही ग्राम राज्य और रामराज्य का आरम्भ हो जाएगा।

ग्राम दान की बात सुनने वाले पूछते हैं कि यह भूमि-क्रान्ति होती कैसे है? एक-एक इंच भूमि के लिए लाशें बिछ जाती हैं, फिर लोग गाँव का गाँव कैसे दे डालते हैं?

कोरापुट में जो गाँव अब तक दान में मिले हैं उनमें बहुमत आदिवासियों के गाँवों का है। आदिवासियों में आरम्भ ही से मिल-बाँट कर खाने का रिवाज है। दूसरे आदिवासियों के गाँवों में सब एक ही जाति के लोग होते हैं, इसलिए जात-पाँत का झगड़ा खड़ा नहीं होता। इसके अतिरिक्त गाँव के लगभग सभी वासियों के रहन-सहन का स्तर समान ही होता है। संयुक्त परिवार की भावना उनमें पहले ही से मौजूद थी। इसलिए ग्राम-दान के लिए वहाँ पहले ही से भूमि तैयार थी।

ग्रामदान होने पर वहाँ के हर परिवार को उसकी आवश्यकता के अनुसार भूमि दे दी जाती है, भले ही उसके पास पहले भूमि थी या नहीं। अक्सर ऐसा भी होता है कि जिन लोगों के पास पहले अधिक भूमि थी, पुनर्वितरण होने पर उन्हें उनके परिवार की आवश्यकताओं को देखते हुए पहले से कहीं कम भूमि मिल पाती है। इसके विपरीत कुछ परिवार ऐसे भी होते हैं जिनके पास पहले कम या बिलकुल भूमि नहीं थी अब अधिक भूमि पा लेते हैं। सारांश यह है कि भूमि के समवितरण में परिवार के अनुसार भूमि दी जाती है। इस बात का कोई ख्याल नहीं रखा जाता कि पहले किसके पास कितनी ज़मीन थी। कोरापुट के लोगों के सम्मुख यह लक्ष्य है—

ग्राम गाँरे भूमिहीन, रहिबे नाहीं, रहिबे नाहीं।
ग्राम गाँरे भूमिमालिक, रहिबे नाहीं, रहिबे नाहीं।

कोरापुट में अब क्या होगा? कोरापुट की आगे की तस्वीर सर्वोदय की होगी। सर्वोदय का अर्थ है, सबका उदय। दूसरे शब्दों में जो सबसे पीछे है, सबसे पिछड़ा हुआ है, जब उसका उदय होगा तब सभी का उदय हो जाएगा।

कोरापुट में अब नव-निर्माण किया जा रहा है। कृषि में सुधार हो रहा है, निरक्षरता के विरुद्ध आन्दलन किया जा रह है, बेकारी दूर करने के लिए ग्रामोद्योगों की नींव डाली जा रही है, गाँवों में पक्के मकान, सड़कें और गलियाँ बनाई जा रही हैं।

इन गाँवों के भविष्य के बारे में स्वयं विनोबा जी ने कहा है—अब इन गाँवों में बड़ा परिवार बनेगा, नई तालिम चलेगी, सामूहिक दुकानें चलेंगी, कोई कर्ज़ नहीं लेगा, एक दूसरे के साथ काम में हर कोई मदद करेगा, शादी के लिए भी कोई कर्ज़ नहीं लेगा। शादी तो गाँव की तरफ़ से होगी। ऐसी सर्वोदय की योजना यहाँ चलेगी। गाँव में हरेक के पास भूमि होगी। सर्वोदय का यह आरम्भ होगा।

कोरापुट के एक गाँव की झाँकी

प्रोजैक्ट ऑफ़िसर की दावत

सुशील वर्मा

"अरे! और तो और, तू भी बदल गई", कहते हुए भालेराव की दादी लाठी टेकते-टेकते आगे बढ़ गई

विष्णु बेलसरे आलू काटने में इतना व्यस्त हो गया कि लगभग पाँच मिनट हो गए पर उसने अपना मुँह नहीं खोला। उसे इतना चुप देखकर वामनराव ने पूछा कि इतनी चुप्पी क्यों साध ली है। कुछ नहीं तो पोवाड़ा ही सुनाओ। बेलसरे ने बिना सिर ऊपर उठाए जवाब दिया—"चुप नहीं रहूँगा तो क्या खुशी मनाऊँगा। साढ़े तीन साल की विकास-योजना बन्द हो रही है और आगे क्या होने वाला है इसका कोई ठीक-ठिकाना नहीं है, तो क्या यह खुशी की बात है।"

इतना कह कर विष्णु बेलसरे सामने लगे हुए आलुओं के ढेर में से उठा-उठा कर फिर से काटने लगा। भुजंगराव जो पत्थर की सिल पर मसाला पीस रहा था और खुले दिल से लाल मिर्च एक के बाद एक चुनता जा रहा था, अपना पीसना रोक कर बोला—"भाई चाहे जो कुछ भी हो आज का दिन हम खुशी-खुशी में ही बिताना चाहते हैं। बुरा आखिर किसे नहीं लग रहा है, पर जब प्रोजैक्ट आफ़िसर को हमने आज अपने गाँव में विदाई की दावत दी है, तब हम उनके सामने रोनी शकल लेकर हाज़िर नहीं होना चाहते। आखिर उन्हें क्या कम दुख है। चार दिन पहले अंजनगाँव में विदाई का कार्यक्रम था, तब मैंने खुद देखा, ईमान से कहता हूँ कि अपनी आँख से देखा, कि प्रोजैक्ट आफ़िसर का गला भर आया था और आँखें भी डबडबा आई।"

भुजंगराव ने सिल पर रखे मसाले के ढेर में पानी के छींटे मारे, उसे समेटा और फिर पीसना शुरू किया। इतनी मिर्च मिलाने के बाद भी वह सोच रहा था कि शायद तरकारी का रंग लाल न आवे। उसके लिए यह इज़्ज़त का सवाल था।

यशवंतराव पाटील फूल की मालाओं का इन्तज़ाम करते हुए पंचायत-घर के आँगन में आए जहाँ खाना बन रहा था। भुजंगराव के सामने मिर्च का ढेर देखते हुए उन्होंने पूछा—"क्या इरादा है, भुजंगराव? ज़बान और पेट जला कर ही रहोगे।"

भुजंगराव ने जवाब दिया—"आखिर मिर्च की ही किफ़ायत क्यों की जावे। जिस खेत में पहले सौ रुपए की मिर्च होती थी, अब वहाँ दुगनी फ़सल होती है। भालेराव के खेत की मिर्च है। कितना कमाया उसने मिर्च से। किर्लोस्कर का पम्प लगवा लिया और समय-समय पर वह सफ़ेद वाली दवाई छिड़क देता है। फिर क्या कहना। पहले जो पत्ती मुड़ जाने की बीमारी लगती थी, वह बिलकुल गायब हो गई और क्या लहलहाती हुई फ़सल आती है। देखते-देखते भालेराव ने कितने गहने बना डाले। प्रोजैक्ट आफ़िसर ने उस दिन भालेराव से कहा था कि रुपयों से पोस्ट आफ़िस के सर्टीफ़िकेट खरीदो, गहना मत बनाओ। उसकी बूढ़ी दादी ने भी सुना, उस समय तो वह कुछ नहीं बोली, पर मेरी काकी से नल पर कह रही थी कि प्रोजैक्ट से परमात्मा बचाए। क्योंकि उसके अफ़सर रोज़ के रोज़ उटपटाँग बातें बताया करते हैं। बाप दादों का पुराना घर गिरवा दिया, क्योंकि गाँव की सड़क चौड़ी करनी थी, घर में खिड़की लगवा दी, धुआँ निकलने के लिए छत में छेद करवा दिया और घर में जाने कौनसी दवाई फव्वारे को पिचकारी से छिड़क दी। आजकल तो रहने का धर्म नहीं है, हर बात में दखल जैसे हम लोग रहना जानते ही नहीं थे। और तो और, उस दिन मेरी बहू कह रही थी कि बच्चों को टीका लगवाना चाहिए और रोज़ नहलाना चाहिए। यह सब बातें उसके दिमाग़ में उस बाई ने भरी हैं, जो प्रोजैक्ट की सोशल

एजुकेशन बाई हैं। कहीं छोटे-छोटे बच्चों को भी रोज़ नहलाया जाता है। ठंडी का बुखार आवेगा, तब पता चलेगा। अरे बदन में ज़रा मट्टी लगी रही तो क्या हुआ। हम तो मट्टी से पैदा हुए हैं और उसी में मिल जावेंगे। एक दिन मेरी बहू कह रही थी कि गाँव की सब औरतों की मीटिंग होने वाली है, जिसे वही प्रोजेक्ट वाली बाई ने बुलाया है। भला बताओ, अब औरतें भी मीटिंग करने लगीं, भाषण देंगी और प्रस्ताव पास करेंगी। आदमियों को चाहिए कि अब घर में बैठें, खाना पकाएँ और बच्चों को देखें क्योंकि उनकी औरतें मीटिंग में जावेंगी। देखते-देखते धर्म बदल रहा है। एक ज़माना था कि जब हमारी शादी हुई थी, तब हम आँख ऊपर उठा कर देखती नहीं थी और सास-ससुर ने कभी हमारी आवाज़ सुनी ही नहीं। और अब यह हालत है कि औरतें मीटिंग में गला फाड़कर भाषण देती हैं। ये सब प्रोजैक्ट की करामात है और उसके ऊपर प्रोजैक्ट आफ़िसर कहते हैं कि गहना मत खरीदो, पोस्ट आफिस के कागज़ खरीदो। सदाशिव मराठे की लड़की की शादी होनेवाली है, उसमें जब हम जावेंगे तब गहने की जगह पोस्ट-आफिस के कागज़ गले, कान और हाथ में चिपका कर जावेंगे। इस पर भुजंगराव की काकी ने जवाब दिया कि गहने ही पहनने की ऐसी कौनसी ज़रूरत है। शादी ब्याह के मौके पर अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने से भी काफ़ी शोभा हो सकती है। पोस्ट आफिस के कागज़ खरीदेंगे तो ब्याज मिलेगा। गहनों का क्या है, चोरी चले गए तो सब स्वाहा। काकी की इस बात से भालेराव की दादी को इतना सदमा लगा कि वह मुँह बाये उसकी ओर देखने लगी। 'अरे और तो और, तू भी बदल गई' ऐसा कहकर भालेराव की दादी लाठी टेकते-टेकते आगे बढ़ गई।"

भुजंगराव के इस वर्णन को सुनकर सब ठहाका मार कर हँस पड़े। विष्णु बेलसरे ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि लोगों के पुराने ख्यालात हमारी प्रगति के सबसे बड़े दुश्मन हैं। एक ओर तो दुनिया इतनी तेज़ रफ़्तार से आगे बढ़ती जा रही है और दूसरी ओर हम अपने पुराने ग़लत तरीकों और विचार धाराओं में सड़ रहे हैं।

विष्णु बेलसरे की हमेशा से यह आदत रही है कि वह हर बात को जोश से कहता है और करता है। किसी बात का विरोध करने में भी उतना ही जोश दिखाता है। जब पहले विकास-योजना आरम्भ हुई उसने काफ़ी विरोध किया। कहता था कि सरकार करेगी-वरेगी कुछ नहीं। लोगों की आँखों में धूल झोंकने का एक तरीका है और चुनाव जीतने की तरकीब है। बरसों से हम देख रहे हैं कि जो अफ़सर गाँव में दौरे पर आता है वही यह कहा जाता है कि हम तुम्हारे गाँव में स्कूल खोल देंगे, सड़क बनवा देंगे, कुआँ खुदवा देंगे, पर आज तक कुछ हुआ? अफ़सरों का क्या है, घंटे आध घंटे के लिए आए, पटेल के यहाँ चाय पी और अच्छी-अच्छी बातें करके चल दिए। हमारे गाँव में बरसात में रहें तो पता चले सड़क की तकलीफ़, गर्मी में रहें तो मालुम हो कि पाँच मील से पीने का पानी लाने में कितनी कसरत होती है। झूठे वायदे करने से तो अच्छा है साफ़-साफ़ इन्कार कर देना।

पर जब विष्णु बेलसरे ने देखा कि प्रोजेक्ट आफ़िसर दूसरे अफ़सरों की तरह शान नहीं दिखाता, उनके साथ घंटों सलाह-मशविरा करने को तैयार रहता है, उनके साथ दरी पर बैठता है और यहाँ तक कि दीना महार के लड़के की शादी में शरीक हुआ, तब विष्णु बेलसरे का माथा ठनका। यही नहीं बल्कि उसने यह देखा कि कुएँ की खुदाई वाकई में शुरू हो गई और ओवरसियर सड़क का नाप भी करने आ गया। और तो और पटवारी और रेवन्यू इन्सपेक्टर, जो प्रोजैक्ट आफ़िसर के सामने जब वह एस० डी० ओ० थे, झुक-झुक कर सलाम करते थे, वे अब बेअदबी से पेश आने लगे। एक दिन जब प्रोजैक्ट आफ़िसर ने पटवारी से ज़मीन नापने को कहा, तो उसने साफ़ कह दिया कि वह जमाबन्दी के काम में लगा है और फ़ुरसत नहीं है। और उस दिन पटवारी दिन भर घर में सोता रहा, चाहता तो ज़मीन का नाप बराबर कर सकता था। खैर, पहले जब प्रोजैक्ट आफिसर एस० डी० ओ० थे, उस समय उनका गाँव में केवल पटवारी एक भक्त था, और अब यद्यपि उनके हाथ में वह सत्ता नहीं है, पर हम सब उनके गुलाम हैं। पटवारी का यदि डर निकल गया है, तो क्या हुआ।

लिहाज़ा अब विष्णु बेलसरे विकास-योजना का पूरा-पूरा भक्त हो गया है, और उसके जोश का भरसक फ़ायदा प्रोजैक्ट आफ़िसर ने उठाया। उसे दूसरे-दूसरे गाँव में प्रोजेक्ट आफ़िसर ले जाते थे और वहाँ उसने विकास सम्बन्धी बड़े जोशीले भाषण दिए। आखिर गाँववालों को सरकारी अफ़सरों की अपेक्षा दूसरे गाँव वालों की बातों पर ज़्यादा विश्वास था।

विष्णु बेलसरे के सारे आलू कट चुके थे और भुजंगराव का मसाला पिस चुका था। बेलसरे एक बड़ी डेकची में मसाला भून रहा था और उसे लाल करने की हिकमत में लगा था। एकाएक उसे भालेराव की दादी की बात याद आ गई, तो उसने माथे का पसीना अपने कमीज़ की आस्तीन से पोंछते हुए कहना शुरू किया—"दादी की बात तो छोड़ दो, बड़े पढ़े-लिखे लोग और अफ़सर भी अभी तक पुराने ख्यालातों में फँसे हैं। उस दिन मैं तहसील दफ्तर अपना लगान पटाने गया था, तो तहसीलदार साहब अपने नायब साहब से कह रहे थे कि सुना है सरकार ने मुझे खण्ड विकास अधिकारी नियुक्त किया है। क्या बताऊँ अजीब परेशानी है। कहाँ मुझे विकास के काम में घुसेड़ रहे हैं।

हम तो शान से तहसीलदारी करना चाहते हैं, ये सड़क, तालाब और कुएँ खुदवाने का काम अपने से नहीं होता। लोगों की खुशामद कौन करता फिरेगा। यहाँ तो यह है कि हुकुम से काम करवाने के आदी हैं। तबादला रद्द करवाने की कोशिश करनी पड़ेगी।''

पर तबादला रद्द नहीं हुआ और बड़े बेमन से तहसीलदार साहब को विकास विभाग में जाना ही पड़ा। विष्णु बेलसरे ने चूल्हे की आग को तेज़ करते कहा—''जब ऐसे विचारों के लोग विकास का काम करेंगे तो क्या खाक काम होगा? पता नहीं उस ब्लाक में क्या होता होगा, जहाँ अपने तहसीलदार साहब का तबादला हुआ है।''

इतने में लोगों ने देखा कि गाँव को जो सड़क आती थी, उस पर कोई मोटर-गाड़ी आ रही है। धूल उड़ रही थी और मोटर की आवाज़ भी आ रही थी। यशवंतराव पाटील, जो उस समय दरी बिछवा रहे थे, अन्दर आए और कहने लगे कि प्रोजैक्ट आफ़िसर इतने जल्दी कैसे आ गए। उन्हें तो करीब तीन घंटे बाद आना था। सब कोई पंचायत-घर के बाहर आए, पर जब मोटर-गाड़ी कुछ करीब आई तब उन्होंने देखा कि वह प्रोजैक्ट आफ़िसर की जीप नहीं थी, बल्कि एक ट्रक था। पाटील ने कहा कि नई सड़क बनते देर नहीं कि ट्रक वालों ने माल ढोना शुरू कर दिया। तरकारियाँ, कपास और अनाज ढोया चला जा रहा है। नतीजा यह है कि पहले जो ज़मीन पड़ती रहती थी, वह भी अब बोई जाने लगी। हाँ, यह भी है कि अपने गाँव के बाज़ारों में दाम बढ़ गए हैं, पर गाँव के लोगों को ही ज्यादा रुपया मिल रहा है और शहर का रुपया भी यहाँ आ रहा है। कुछ हद तक चीज़ों का दाम बढ़ना अच्छी निशानी है। किसानों को ज्यादा रुपए मिलेंगे, तो वे और दिलचस्पी से खेती करेंगे। दूसरे लोग भी अधिक मेहनत से काम करेंगे, जिससे कि वे महँगी चीज़ें खरीद सकें। वरना अब तक तो यह है कि किसान व मजदूर केवल इतना ही काम करते हैं कि उन्हें पेट या आधा पेट खाने भर को मिल जावे।''

जनार्दन देशपांडे उसी समय आसपास के दो-चार गाँवों से पेट्रोमैक्स लेकर पंचायत-घर पहुँचे। उन्होंने जब सड़क की बात सुनी तो कहने लगे—''भाई मेरी दृष्टि में सड़क का सबसे बड़ा काम यह हुआ है कि हमारे गाँव के पुराने झगड़े मिट गए। याद है वह दिन लगभग दो साल पहले, जब कि हम आपस के झगड़ों को कितना महत्त्व देते थे और उसी में अपनी सारी ताकत ज़ाया करते थे। ग्राम-पंचायत के निर्माण के बाद तो हमारे दल ने यह तय किया था कि यशवंतराव पाटील सरपच की हम हमेशा खिलाफ़त करेंगे, क्योंकि हमको सरपंच नहीं बनाया गया। जब प्रोजैक्ट आफ़िसर ने पहली बार सड़क का प्रस्ताव रखा था, तब हमारे दल ने उसका विरोध किया। उसमें विष्णु बेलसरे भी शामिल था। विरोध करने का कारण केवल यह था कि यदि सड़क बन गई तो यशवंतराव पाटील की धाक और जम जावेगी। सड़क हमारे खेत से जाती। हमने ज़मीन देने से इंकार किया। यशवंतराव पाटिल ने प्रोजैक्ट आफ़िसर को सलाह दी कि सरकार ज़रूरत की ज़मीन को हस्तगत कर ले पर प्रोजैक्ट आफ़िसर ने जवाब दिया कि वैसा करना विकास योजना की भावना के खिलाफ़ होगा। पहले लोगों का सहयोग प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करना है। यदि सफलता नहीं मिलती है तब उसका मतलब है कि हम ही में कुछ कमी है। प्रोजैक्ट आफ़िसर अंदरूनी बात समझ गए और उन्होंने मुझ से अकेले में बुलाकर पूछा कि क्यों जनार्दन यदि ग्राम-पंचायत के नाम से सड़क न बनाकर आम जनता के नाम से बनावें, तो क्या पूरा सहयोग मिल सकेगा। मैंने कहा, हाँ। फौरन उन्होंने विकास मंडल का निर्माण किया जिसका किसी दल से कोई मतलब नहीं था और जिसकी सदस्यता सब के लिए खुली थी। जो भी विकास कार्य में भाग लेना चाहता था, इसका सदस्य बन सकता था। कितनी अच्छी तरकीब निकाली थी, प्रोजैक्ट आफ़िसर ने।''

यशवंतराव पाटील ठहाका मार कर हँसे और देशपांडे को सम्बोधित कर बोले—'तुमको एक और हिकमत जो प्रोजैक्ट आफ़िसर ने खेली थी, नहीं मालूम। मुझे बुलाकर उन्होंने कहा कि जनार्दन देशपांडे सड़क की स्कीम की खिलाफ़त करता है, इस लिए हम उसी को विकास-मंडल का अध्यक्ष बनावेंगे। झख मार कर उसे काम करना पड़ेगा। मैं राज़ी हो गया और इस प्रकार तुम अध्यक्ष बना दिए गए।''

जनार्दन देशपांडे ने मुस्कुराते हुए कहा—''अच्छा यह बात थी। प्रोजैक्ट आफ़िसर को आने दो तो मैं उनकी चालाकी का स्पष्टीकरण उनसे मागूंगा। खैर, सड़क तो बन गई। २५ मील की फर्स्ट क्लास सड़क दो साल में बनाई। और उसमें कम से कम दस पक्के पुल। कोई और तो करके दिखाए। पूरा इलाका खुल गया, जब ही तो दनादन ट्रक दौड़ते जा रहे हैं। लोगों के सहयोग से क्या नहीं होता। हर गाँव के विकास-मंडल के लोग दिनरात लगे रहे। जब पुल के ऊपर स्लेब डले, तब तो बाबा हम दो रात तक सोए नहीं। पर क्या उत्साह दिखाया लोगों ने। बैलगाड़ियाँ खुशी से दीं, ज़मीन बिना कीमत के दे दी, मज़दूरों ने रेट कम कर दिया और उनसे चाहे जितना काम करा लो। प्रोजैक्ट आफ़िसर ने साफ़ कह दिया कि सड़क आप लोग बना रहे हैं, सरकार तो केवल आपकी मदद कर रही है। ज़िम्मेदारी पूरी आप की है। कहते थे की आप लोग आज्ञा दीजिए, हम उसका पालन करेंगे।

[शेष पृष्ठ ३० पर]

दिल्ली के निकट छत्रपुर गाँव में सिंध और बहावलपुर के २५ परिवारों ने एक बहुद्देश्यीय सहकारी समिति की स्थापना की है। चित्र में समिति के सदस्य भूमि साफ़ कर रहे हैं

हमारा सहकारी आन्दोलन

ऊपर : *किसान बड़ी उत्सुकता से ट्रैक्टर देख रहे हैं।*
नीचे : *ट्रैक्टर से भूमि साफ़ की जा रही है। यह ट्रैक्टर केन्द्रीय कृषि मंत्रालय द्वारा उपलब्ध*

उत्तर प्रदेश की एक सहकारी समिति की गाड़ी पर कारखाने ले जाने के लिए गन्ना लादा जा रहा है

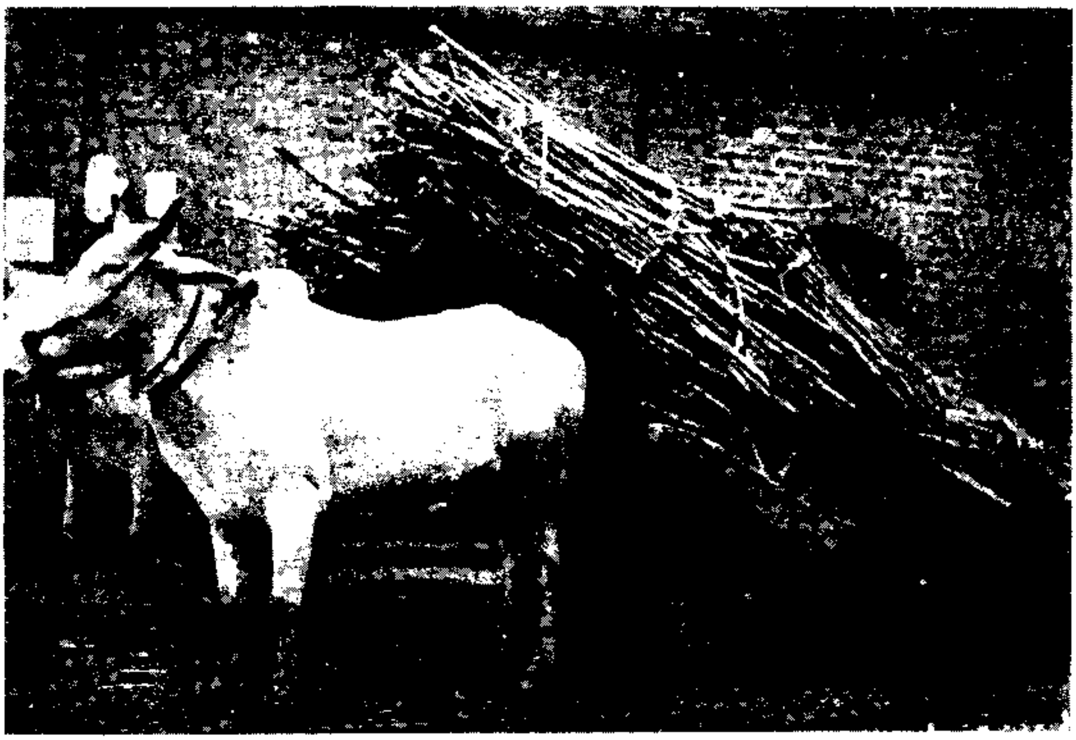

एक कारखाने पर माल तोला जा रहा है। समिति के कार्यकर्त्ता इस कार्य की स्वयं देख-भाल करते हैं

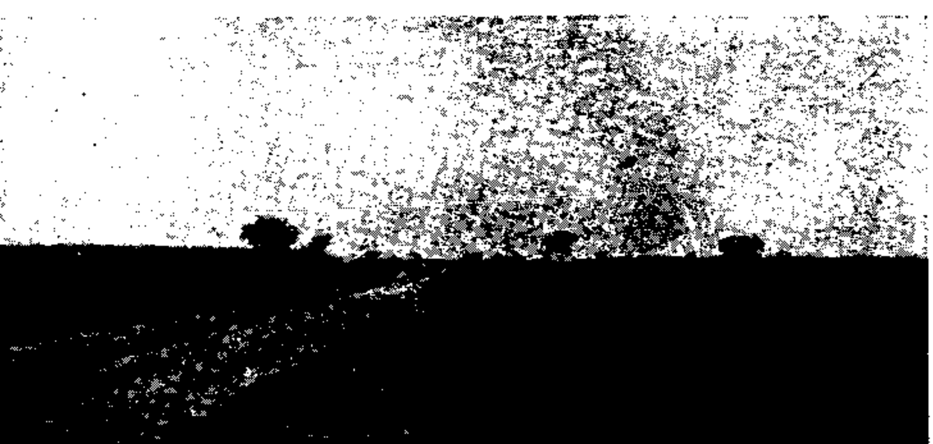

एक कारखाने के क्षेत्र में एक समिति ने ५४ मील लम्बी पक्की सड़क का निर्माण कर डाला है

एक कारखाने में गन्नों से लदी गाड़ियाँ आरही हैं। सहकारी समितियों के कारण कारखानों को नियमित रूप से माल मिलता रहता है

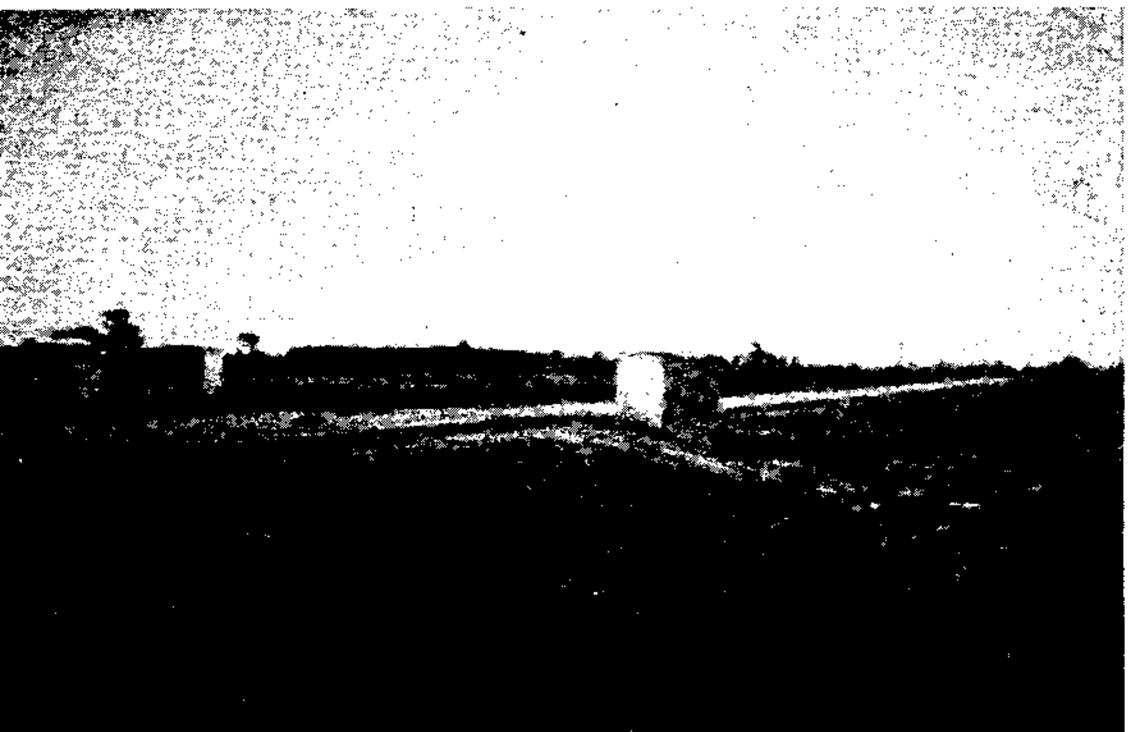

माल के परिवहन में सुविधा के लिए समितियों ने अनेक पुलियों और सड़कों का निर्माण किया है

गन्ना सहकारी समितियों ने ऐसे १०० स्कूलों की स्थापना की है

ऊपर : एक गाँव में सहकारी समिति के सदस्यों की सभा हो रही है। **नीचे :** सहकारिता के कारण ही मशीनों द्वारा खेती संभव हो सकी है

एक सच्ची घटना

देवनारायण राम

७ अगस्त, १९५५ की शाम की बात है। अकस्मात् भभुआ खण्ड के कृषि अधिकारी शर्मा जी का पत्र मिला कि अखलासपुर ग्राम में हैज़े का भयंकर प्रकोप हो गया है। उन्होंने मेरे शीघ्र आने के लिए जीप गाड़ी भी भेज दी थी। मैं शीघ्रातिशीघ्र कुछ दवाइयाँ लेकर अपने चपड़ासी और मेहतर के साथ अखलासपुर ग्राम पहुँचा। कुछ-कुछ वर्षा हो रही थी। गाँव में सन्नाटा था। रात के आठ बजे होंगे। मातृसेवा तथा शिशुकल्याण केन्द्र में मैं ठहरा। वहाँ के चौकीदार द्वारा गाँव-वालों को अपने आने की सूचना दी। कुछ रोगियों को उनके घर पर ही देखा, उनकी यथासम्भव चिकित्सा की गई। मैं रोगियों को देखने के बाद शिशुकल्याण केन्द्र में बैठा था। उस समय रात के १० बजे होंगे। उसी समय बारामती बुआ कन्धे पर शान्तिनिकेतन वाला झोला लटकाए वहाँ आईं। मुझे इतनी रात गए वहाँ देखकर वह बहुत हैरान हुई और बोलीं—"भैया, तुम इतनी रात गए यहाँ क्या कर रहे हो?"

मैंने कहा—"बुआ, तुम्हें मालूम नहीं?"

बारामती बुआ बोली—"मैं अभी बनारस से आ रही हूँ। आठ दिन से वहीं थी।"

मैंने कहा—"यहाँ हैज़े का भयंकर प्रकोप हो गया है।"

इसके बाद वह घर चली गईं। मैं भी उस समय तक जितने रोगियों को देख सका था, उन्हें दवा दी और रात के बारह बजे भभुआ लौटा।

दूसरे दिन प्रातः ही मैं अखलासपुर पहुँचा। वहाँ बारामती बुआ तथा लक्ष्मी बाबू मिले। बहुत लोग इकट्ठे नहीं हो सके। हैज़े से लोग बहुत डरते थे। दुःख की बात यह है कि इस रोग में जिन बातों से डरना चाहिए, लोग अज्ञानवश उन बातों से नहीं डरते। केवल घर से बाहर निकलने में ही डरते हैं। रोगी के मल, उल्टी तथा उन पर भिनभिनाने वाली मक्खियों से एकदम नहीं डरते।

मैं अनेक रोगियों के घर गया। अधिकांश का दशा ऐसी थी कि उन्हें बड़ी सावधानी की ज़रूरत थी। मैंने लोगों को समझाया कि कुछ रोगियों को शीघ्र ही अस्पताल ले जाएँ लेकिन वह लोग नहीं माने।

वे लोग रोगियों को घर में ही रखते थे। उनका मल, मूत्र और वमन घर के फ़र्श पर पड़ा रहता था। बहुत करते तो उस पर राख डाल देते थे। मक्खियाँ भन-भन करती रहती थीं और बीमारी को भयंकर रूप से फैलाती थीं। अन्य लोग रोगी को घेरे बैठे रहते थे। रोगी के हाथ-पैर में तेल मालिश करने में तीन चार आदमी लगे रहते थे। कितने घरों में तो रसोई घर में ही रोगी रक्खे देखे गए। पानी के घड़ों का मुँह खुला था और सैकड़ों मक्खियाँ उनपर भन-भन किया करती थी। रोगी के परिचारकों की संख्या अधिक थी। परिचार के बाद हाथ-पैर ठीक से साफ़ करना तथा कपड़ा बदलना और उसे फेनाइल के पानी से धोना तो वे जानते ही नहीं थे। वैसे गाँव काफ़ी समृद्ध था, किन्तु वहाँ निर्धन भी बहुत थे। गाँव की आबादी क़रीब ४,५०० होगी परन्तु बहुत यत्न करने पर भी केवल ४०० आदमियों ने हैज़े का टीका लगवाया। बीमारी हरिजन मुहल्ले से शुरू हुई। अखलासपुर वालों ने रोग को भयंकर रूप धारण करने में भरसक सहायता दी। लोगों को समझाया गया कि यह रोग एक प्रकार के कीटाणुओं से फैलता है, जो आँखों से नहीं देखे जा सकते। ये कीटाणु रोगी के मल तथा वमन (उल्टी) में अरबों की संख्या में पाए

जाते हैं। रोगी के मल और वमन से कीटाणु पानी तथा खाद्य पदार्थों में पहुँचते हैं। वही पानी और खाना अगर नीरोग मनुष्य ग्रहण करेंगे तो उन्हें भी एक से पाँच दिनों के अन्दर यह बीमारी हो जाएगी। इन कीटाणुओं को फैलाने में मक्खियों का बड़ा हाथ रहता है। मक्खियाँ अपने पैरों और परों में कीटाणुओं को लेकर दूर-दूर तक यह रोग फैला देती हैं। इस भयानक अदृश्य शत्रु पर गोला-बारूद काम नहीं कर सकते। अतः इस अदृश्य शत्रु से लड़ने के लिए आप लोगों को सबसे पहले रोगी को अस्पताल में रखना चाहिए, जहाँ रोगी का मल और वमन व्यवस्थित ढंग से फेंका जा सके और रोगी की चिकित्सा भी भली प्रकार हो सके। मक्खियों को आप अपना सबसे बड़ा शत्रु समझें। खाने-पीने की चीज़ों को ढक कर रक्खें जिससे मक्खियाँ उनमें प्रवेश न कर सकें। अधिक ताप में कीटाणु मर जाते हैं। अतः खाने-पीने की चीज़ों को गर्म करके खाना चाहिए। हैज़े को दूर भगाने के लिए नीरोग मनुष्यों को टीका लगवाना चाहिए। कुओं के जल को 'ब्लीचिंग पाउडर' या 'पोटाश' से साफ़ करना चाहिए। नालियों में भी कीटनाशक दवा डालना ज़रूरी है।

इन परिस्थितियों में एक अस्थायी अस्पताल चालू करना आवश्यक जान पड़ा। मैं गाँव के बाहर एक घर की खोज में निकला। गाँव के बाहर, सड़क के किनारे लक्ष्मी बाबू का एक बगीचा है। इन दिनों इसमें फल नहीं लगे थे। इसमें एक टूटा-फूटा फूस का छायाधाला मकान था। लक्ष्मी बाबू अस्पताल के लिए यह मकान देने को तैयार हो गए।

अखलासपुर से १० मील पर महेनियाँ में भी इस बीमारी का छिटफुट प्रकोप हो गया है ऐसा मुझे किसी से ज्ञात हुआ। अब मैं मोहनियाँ की दशा देखने चला। कुछ ही दूर गया था कि रास्ते में प्रोजैक्ट अफ़सर की जीप आ रही थी। मैं रुका और उनसे मिला। उन्होंने मुझसे अखलासपुर की स्थिति पूछी और मैंने उन्हें संक्षेप में सारी बातें कह सुनाईं। मुझे लौटने का आदेश मिला। मैं उनके साथ अखलासपुर लौट आया। राह में उन्हें लक्ष्मी बाबू वाला बाग और मकान दिखलाया और अस्थायी अस्पताल चालू करने की अनुमति देने के लिए आग्रह किया।

अखलासपुर पहुँचकर हम मातृ सेवा तथा शिशु कल्याण केन्द्र में बैठे। कुछ ग्रामवासी भी एकत्र हुए। प्रोजैक्ट अफ़सर ने उपस्थित लोगों को इस महामारी के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित किया। इस पर भी वहाँ के लोगों ने अपने रोगियों को निकटवर्ती अस्थायी अस्पताल में ले जाने में बहुत असुविधा और असंतोष प्रकट किया परन्तु कोई उपाय नहीं था।

उसी समय, जब हमलोग वहाँ से प्रस्थान के लिए उठ कर जीप पर चढ़ ही रहे थे कि लक्ष्मी बाबू ने प्रोजैक्ट अफ़सर से निवेदन किया कि एक रोगी की हालत कुछ खराब है और उसकी चिकित्सा एक स्थानीय चिकित्सक कर रहे हैं। इस पर प्रोजैक्ट अफ़सर ने मुझे उनकी परीक्षा तथा चिकित्सा करने को कहा। मैंने उनसे कहा कि वे पैसे खर्च कर एक विश्वासी चिकित्सक से चिकित्सा करा रहे हैं, मेरा उनके यहाँ जाना व्यर्थ होगा। इस पर उन्होंने कहा कि विकास योजना कार्यकर्ताओं को उनके पास भी जाना चाहिए और पूर्ण विश्वास प्रकट किया कि अब वे भी मुझसे ही चिकित्सा करावेंगे। मैं रोगी के पास गया। उसकी परीक्षा की। रोगी की हालत बहुत खराब थी। हाथ की नाड़ी मालूम ही नहीं पड़ती थी। मैंने उसकी प्राथमिक चिकित्सा की और प्रोजैक्ट अफ़सर को इस बात की सूचना दी। उस पर उन्होंने कहा कि इस रोगी को हम आपको सौंपते हैं और आशा करते हैं कि रोगी स्वस्थ हो जाएगा। इसके बाद हम लोग उस गाँव से चल पड़े। वे सहसराम गए और मैं भभुआ।

खाना खाने के बाद मैंने सलाइन-सेट ठीक किया। सलाइन बनाया। पूरे समान के साथ साढ़े दस बजे रात को पुनः उस ग्राम में पहुँचा। लक्ष्मी बाबू साथ-साथ रहे। मैं रोगी के घर पहुँचा। रास्ता तंग था। बरसात का समय था। कीचड़ बहुत ज्यादा थी। प्रकाश की कमी थी। रोशनी के लिए मिट्टी का दीपक था। एक छोटे से टार्च से काम लिया। रोगी की रक्त धमनी में सलाइन दिया गया। और अन्य बहुत-सी दवाइयाँ दीं। अब हाथ की नाड़ी मालूम पड़ने लगी। हालत सुधरी। साढ़े तीन बजे रात में मैं वहाँ से चला और भभुआ आकर विश्राम किया।

सवेरे फिर अखलासपुर ग्राम पहुँचा। जिन लोगों को दवा दी थी उन सबों की हालत अच्छी थी। घर-घर जाकर रोगियों को देखा तथा उपचार भी किया। आज अधिकांश नए रोगियों की हालत खराब थी। ऐसी हालत में मामूली दवाइयाँ देना अधिक लाभदायक न था। उनकी पूर्ण रूपेण चिकित्सा होनी चाहिए थी। मैंने सोचा, अब अस्पताल शीघ्र ही चालू करना होगा। मातृ सेवा एवं शिशुकल्याण केन्द्र की धाय से आग्रह किया कि जो कोई दस्त या उल्टी वाला रोगी आवे उसे पूर्ण मात्रा में केओलिन मिक्सचर और सल्फाग्वीनीडीन की गोलियाँ दी जाएँ। मैं अस्पताल चालू करने की चिन्ता में था। संयोग से समीप में ही एक दूसरा सुन्दर मकान अस्पताल के लिए मिल गया। मकान अखलासपुर निवासी एक सज्जन श्री लालजी सिंह का था। ग्रामीणों का आतंक इस चरम सीमा तक पहुँच गया था कि लोग इस महामारी का नाम ही सुन कर घबड़ा जाते थे। घबड़ाते भी क्यों नहीं, जब कि हम लोगों के उपचार के पहले, सिर्फ़ दो-तीन दिनों

में ही करीब बारह व्यक्ति काल के गाल में समा चुके थे।

इस मकान की सफाई बारामती देवी तथा लक्ष्मी सिंह को ही करनी पड़ी क्योंकि गाँव के जिस मुहल्ले के निकट यह मकान था, उस मुहल्ले के लोगों को यह पसन्द नहीं था कि हरिजन टोले के बीमार लोग उस रास्ते से आएँ। ऐसी कठिनाइयों के बावजूद इन दोनों ने मकान को यथा समय साफ-सुथरा कर लिया। खाट और प्रकाश का प्रबन्ध भी पूरा न था।

इस प्रकार ६ अगस्त, १९५५ को संध्या तक अखलासपुर ग्राम में एक अस्थायी विसूचिका अस्पताल आरम्भ हो गया। उस समय तक कार्यकर्ताओं की नितांत कमी थी। अस्पताल में काम करने के लिए कोई मेहतर तक उपलब्ध नहीं था। इस प्रकार के सभी कामों का भार बारामती देवी तथा लक्ष्मी बाबू के ऊपर पड़ा। हम लोग उस दिन वहाँ केवल छः रोगियों के रहने लायक प्रबन्ध कर सके।

उस रात को मैं काफ़ी देर तक ठहरा। किन्तु केवल एक ही रोगी उस अस्पताल में आया। यह वही रोगी था जिसे गत रात मैंने उसके घर जाकर सलाइन दिया था। उचित उपाय करके मैं भोजन करने गया और पुनः अस्पताल लौट आया। आशा थी कि इन दो घंटों के भीतर कुछ और रोगी आ जाएँगे, किन्तु उस रात को और कोई रोगी नहीं आया। इससे मुझे निराशा हुई।

अस्पताल में भर्ती हुए एक मात्र रोगी की सफलता ने अन्यान्य बीमारों तथा उसके परिवार वालों को काफी विश्वास और बल दिया जिसका प्रभाव यह हुआ कि दूसरे ही दिन तड़के सभी रोगी-शैयाएँ भर गईं।

उसी दिन अखलासपुर से ३ मील की दूरी पर स्थित दुमदुम ग्राम के कुछ लोग मेरे पास हैज़े की दवा लेने आए। उन लोगों से मुझे ज्ञात हुआ कि वहाँ इस बीमारी का प्रकोप हो गया है। मैंने उन लोगों को दवा दी। अस्पताल के कामों से निवृत हो, मैं दुमदुम की दशा देखने गया। साथ में शर्मा जी (कृषि अधिकारी, भभुआ खण्ड) भी थे। जहाँ तक कार जा सकी, गई। उसके बाद हम दोनों पैदल उस गाँव में पहुँचे। रास्ता कठिन था; पर दूसरा कोई उपाय भी नहीं था। वहाँ भी गाँव में सन्नाटा था। घर-घर में जाकर रोगियों को देखना पड़ा। बहुतों की हालत बहुत दयनीय थी। उन्हें बचाने के लिए पूरी चिकित्सा और सेवा की नितान्त आवश्यकता थी। अधिकांश रोगी गरीब परिवार के ही थे। तात्कालिक चिकित्सा का प्रबन्ध कर मैंने उन लोगों से आग्रह किया कि वे अपने रोगियों को खाट पर लाद कर अखलासपुर ग्राम के अस्पताल में लावें। किन्तु इस महामारी से लोग इतने अधिक आतंकित थे कि लोग एक दूसरे को सक्रिय रूप से सहायता देने को तैयार न थे। किसी-किसी परिवार में तो बीमार के सिवा ऐसा एक भी पुरुष सदस्य न था कि रोगी को अस्पताल तक पहुँचा सके। यह एक कठिन समस्या थी। रोगियों के लिए मृत्यु से लड़ने के बजाय उसके आगे आत्म समर्पण करने के सिवा और कोई चारा न था।

किन्तु पहले दिन ही अकस्मात् शिवध्यान गौड़ से मेरी भेंट हो गई। उन से मिल कर मुझे आभास हुआ कि इस व्यक्ति में अवश्य ही असाधारण सेवा-भावना है। उस दिन आठ बजे रात तक उस गाँव से कोई भी रोगी मेरे अस्तपाल में नहीं आया। मैं बड़ा निराश हुआ।

दूसरे दिन मैंने बारामती देवी से आग्रह किया कि वे उस गाँव में जाएँ। मैंने सोचा कि शायद इनके जाने से लोग प्रभावित हों। इनमें भी कुछ अजीब शक्ति है। उन्होंने मेरा आग्रह मान लिया। वे दुमदुम गईं। प्रभाव अच्छा हुआ। उसी दिन, दो बजे दिन से उस गाँव से रोगी आने लगे। मैंने देखा कि आगे-आगे शिवध्यान बूढ़ा था, आँख पर मोटे शीशे का चश्मा लगाए, हाथ में एक छोटी लाठी लिए फटे-पुराने अधमैले कपड़े पहने। उसके पीछे एक खाट पर एक रोगी को दो नौजवान ला रहे थे। शिवध्यान ने मुझे प्रेम से सलाम किया और कहा—"डाक्टर साहब आपके कहे मुताबिक मैं इस रोगी को आप के पास लाया हूँ, इसका उपचार कीजिए।" रोगी को लाद कर लानेवालों में एक तो शिवध्यान का ही ज्येष्ठ पुत्र जगन्नाथ था। उस दिन से कोई भी उस गाँव में महामारी से ग्रस्त होता उसे शिवध्यान मेरे अस्पताल में ले आता। ईश्वर की कृपा से उसके गाँव के सभी रोगी अच्छे हो गए।

परन्तु शिवध्यान का वह लोक सेवक बेटा इस महामारी में फँस गया। मुझे भगवान के न्याय पर भ्रम होने लगा। उसे मैंने अस्पताल में रख लिया, उसकी सेवा सुश्रुषा होने लगी। इस हालत में भी शिवध्यान विचलित नहीं हुआ। पूर्ववत् अपना सेवा क्रम जारी रक्खा। रोगियों की संख्या अब कम हो चली थी। शिवध्यान का लड़का अच्छा हो गया। हमलोग बड़े प्रसन्न हुए।

बारामती देवी तथा लक्ष्मी बाबू दिन रात अस्पताल ही में रहते थे। अलग एक तम्बू था। उसी में वे लोग बैठ कर भोजन करते थे। घर से उन लोगों का भोजन आता था। बारामती देवी स्वयं रोज़ घर लीपती थीं, रोगियों का मलमूत्र और वमन फेंकती थीं। रोगियों का खाना बनाना और नियमित रूप से उन्हें दवा पिलाना और खिलाना उन्होंने अपना नित्य का काम बना लिया था। बारामती बुआ एक बहुत धनी परिवार की महिला हैं। ससुराल वाले भी बहुत धनी हैं। किन्तु दुर्भाग्य है कि वे बाल-विधवा हैं। एक दिन

की कहानी मुझे याद आती है। उन्होंने किसी स्त्री परिचारिका से घर लीपने में हाथ बटाने को कहा। इस पर वह अज्ञानतावश बोली – "तुम इतने धनी परिवार की हो, उस पर भी कुछ पैसे के लोभ में ऐसा छोटा काम करती हो। मैं तो ऐसा काम नहीं करूँगी।"

इस पर बारामती हँसी और बोलीं— "पगली कहीं की!"

लक्ष्मी बाबू का भी काम बहुत भारी था। अस्पताल का सारा इन्तज़ाम इन्हीं के हाथ में था। जो भी कमी होती, मैं उन्हें बतलाता और वह विकास-खण्ड में जाकर पूरा कर आते। लक्ष्मी बाबू को उस समय घर से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था। एक बार मैंने देखा कि उनकी स्त्री भी अस्पताल में काम करने आ गई। मैंने उन्हें मना किया, कहा कि आप को अपने बच्चों को भी तो सँभालना है। यह छूत की बीमारी है। ऐसा समझा कर मैंने उन्हें लौटा दिया। लेकिन लक्ष्मी बाबू तो इस अस्पताल के काम में खो गए थे। यहाँ एक घटना उल्लेखनीय है। गाँव के कुछ लोग इन पर इस काम के लिए बिगड़ पड़े। वे कहते थे कि लक्ष्मी तो इस गाँव में हैज़े का अस्पताल खोल कर दूसरे-दूसरे गाँवों के रोगियों को यहाँ रखता है। वह गाँव में और अधिक बीमारी फैलाएगा। कुछ लोग तो इन्हें पीटने को भी उतारू हो गए। मैंने इन लोगों को काफ़ी समझाया, लेकिन उन्होंने मेरी एक न सुनी। मकान मालिक को भी भड़काया और उन्हें सलाह दी कि वह हम लोगों से मकान छीन ले। लाचार होकर स्थानीय एस० डी० ओ० साहब की शरण लेनी पड़ी, उनकी मदद से यह समस्या हल हो गई।

रोगियों की संख्या काफी बढ़ने लगी। अब तो जो बीमार पड़ता सीधे अविलम्ब इस अस्पताल में आ जाता। मुझे रोगियों को एक शामियाने में रखना पड़ा। उस पर भी रोगियों की बाढ़ बनी रही। किसी किसी दिन तो ऐसा होता कि रोगी को आम के वृक्ष के नीचे ही दिन-दिन भर रहना पड़ जाता और वहीं उसकी चिकित्सा होती। हैजा रोकने के और भी उपाय किए गए। लोगों के हैज़े के टीके लगाए गए। अब लोग अधिक संख्या में टीका लगवाने लगे। कुओं में प्रतिदिन ब्लीचिंग पाउडर डाला जाने लगा। नालियाँ साफ होने लगीं। उनमें कीटनाशक दवा डाली जाने लगी।

अब रोगियों की संख्या कम होने लगी। रोगमुक्त हुए अधिकांश लोग अस्पताल छोड़ कर घर जाने लगे। आने वालों की संख्या कम होने लगी। किन्तु दुर्भाग्य फिर आ धमका। बेचारा शिवध्यान खुद इस महामारी का शिकार हो गया। उसे अस्पताल में रक्खा गया। दवा हुई। वह बेचारा अच्छा हो गया। बीमारी में भी वह अपने लिए चिंतित न था, उल्टे मुझे ही धीरज धरने और काम करने के लिए प्रोत्साहित करता।

किसी भी रोगी को कोई दवा खरीदनी नहीं पड़ी। विकास-खण्ड की ओर से सब दवाओं का इन्तज़ाम था। भमुआ और महेनियाँ की दुकानों का सारा डिस्टिल्ड वाटर खत्म हो गया। मेटरनिटी अस्पताल की दाइयों ने नर्सों का काम किया। गांव के कुछ और लोगों ने भी काफी मदद की। यद्यपि इस अस्पताल में कार्य करने वाले लोगों को कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं मिला था, फिर भी जिस तत्परता से इन लोगों ने सारा कार्य निभाया वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। इस अस्पताल में कार्य करने वालों का सहयोग इतना सुन्दर था कि किसी को रात दिन काम करने के बावजूद किसी प्रकार की कोई शिकायत न थी और न कोई थका हारा ही मालूम पड़ता था। लगातार करीब एक माह तक यह अस्पताल पूरा काम करता रहा।

जिस समय इस गाँव में बीमारी का भयंकर प्रकोप था उसी समय, यहाँ से ११ मील दूर स्थित, बरेज गाँव में भी यह महामारी फैल उठी। सूचना पाकर मैं तथा शर्मा जी उस गाँव में गए। रोगियों को दवा दी गई तथा महेनियाँ अस्पताल के डाक्टर साहब से आग्रह किया गया कि वह रोगियों की मदद करें। इसके लिए उन्हें कुछ जरूरी दवाइयाँ भी दी गईं। उन्हें यह भी कहा गया कि अगर दवा कम पड़े तो आपको और दवाइयाँ भेज दें। दो दिन के बाद मैं फिर वहाँ गया। पाँच रोगियों को देखा। दवा दी गई और वे अच्छे हो गए। इस प्रकार वहाँ भी बीमारी को फैलने से रोका गया। विकास योजना अधिकारी को हार्दिक धन्यवाद है जिन्होंने इस कार्य में मुझे काफी मदद दी। मैं श्री छवित प्रसाद, ओवरसीयर, पशुपालन भभुआ खण्ड को भी हार्दिक धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने मुझे रोगियों को सलाइन आदि देने में पूरी सहायता पहुँचाई।

★

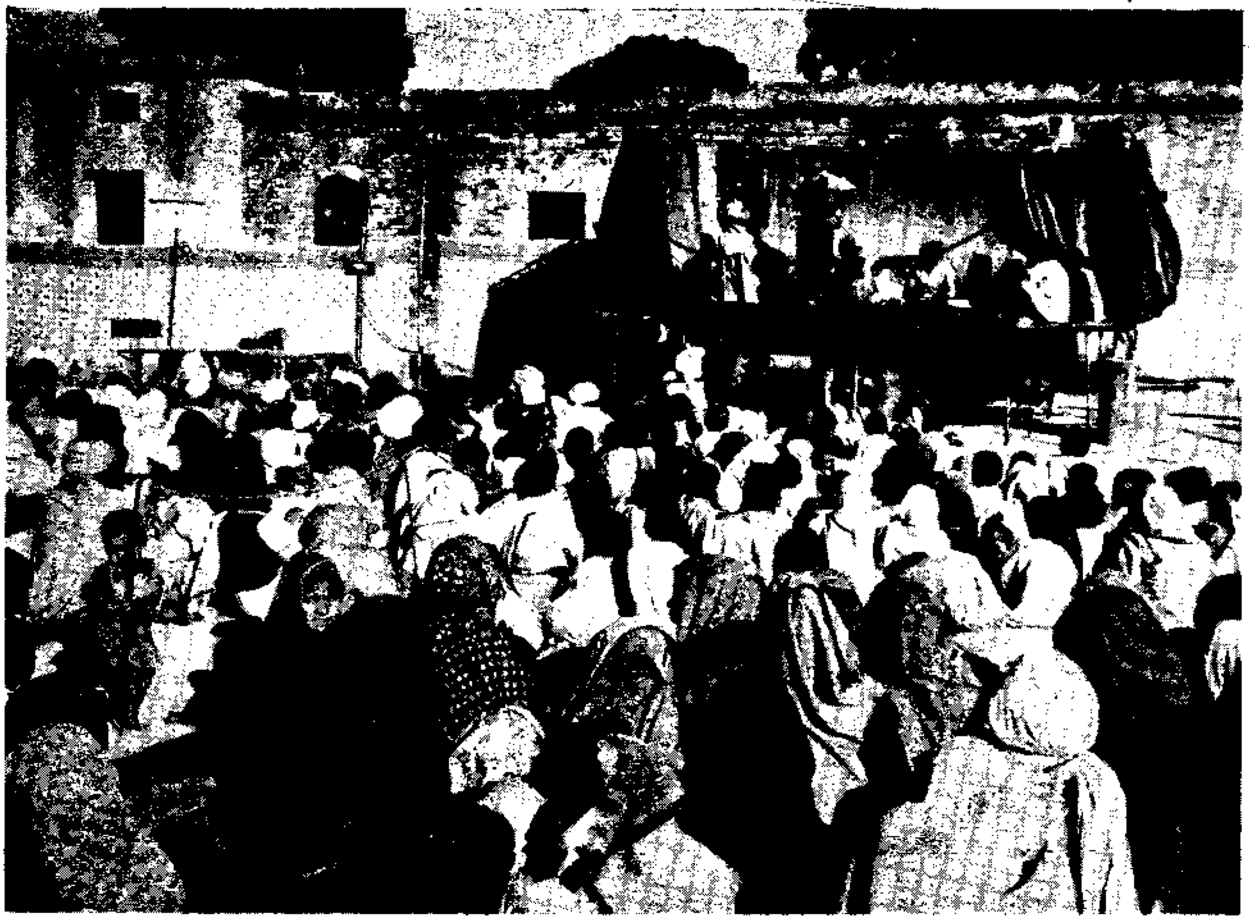

एक गांव में मनोरंजन द्वारा गांववालों को शिक्षा

समाज शिक्षा के तत्व

के० एम० पणिक्कर

हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक अत्यधिक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि शिक्षा के प्रसार में निजी संस्थाओं ने सदा बहुत बड़ा योगदान दिया है। हालांकि प्रौढ़ शिक्षा की समस्या की ओर संगठित तथा सार्वजनिक रूप से तो कुछ समय पूर्व ही से ध्यान दिया जाने लगा है, तो भी ऐसा समझना बिलकुल ग़लत है कि भारतीय समाज ने इस से पूर्व इस समस्या को कभी महत्व नहीं दिया और न ही इसे हल करने के लिए संस्थाओं के विकास की ओर ध्यान दिया है। भारतीय मन्दिरों से सम्बद्ध मेलों और त्यौहारों का एक उद्देश्य शैक्षणिक भी था। पुराणों के सार्वजनिक पाठ, हरिकथाओं और भजनों के गायन, लोक-कला प्रदर्शनियों और अन्य अनेक प्रथाओं का, जो पहले थीं और जिनमें से कुछ अब भी जीवित हैं, मूल उद्देश्य समाज शिक्षा ही था। वास्तव में यह कहना अनुचित न होगा कि भारत में साक्षरता कम होते हुए भी जो संस्कृति का विस्तृत और व्यापक विकास हुआ है, उसका कारण यह लोकप्रिय संस्थाएँ ही थीं। संस्कृति के प्रसार में संयुक्त परिवार प्रणाली का जो महत्वपूर्ण हाथ रहा है, उसे भी भुलाया नहीं जा सकता। संयुक्त परिवार प्रणाली का अब बड़ी तेज़ी से ह्रास हो रहा है, परन्तु स्मृति-काल में इसने समाज शिक्षा के प्रसार में जो योग दिया है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। हमारे महाकाव्यों की कथाएँ, हमारे धार्मिक ग्रन्थों में दी गई शिक्षा, हमारे सामाजिक आदर्श व जीवन की मर्यादाएँ —सच तो यह है कि राष्ट्रीय संस्कृति के अधिकतर तत्व

दिल्ली के एक गांव में लोग रेडियो कार्यक्रम सुन रहे हैं

संयुक्त परिवार प्रणाली द्वारा जिसमें बड़े-छोटे मिलकर रहते हैं, पीढ़ी दर पीढ़ी चलते आए हैं।

अब प्रौढ़ शिक्षा की समस्या ने नया रूप धारण कर लिया है। राष्ट्र के लिए इसका महत्व बहुत बढ़ गया है और यह हमारे सामाजिक जीवन की मुख्य समस्याओं में से एक बन गई है। किसी जनतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि हर स्तर पर जनतन्त्र के नागरिकों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाए। प्रौद्योगिक व अन्य परिवर्तनों के फलस्वरूप हमारे समाज का रूप बदलता जा रहा है, परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक होता जा रहा है कि हम नए ज्ञान को हर व्यक्ति तक पहुँचाने का प्रयत्न करें। जिस नई समाज व्यवस्था का हम निर्माण कर रहे हैं, आवश्यक है कि लोग उसे समझें, उसे अच्छी तरह जानें और उसका प्रसार करें। वास्तव में आज के युग में समाज शिक्षा परिवर्तन का साधन-स्वरूप बन गई है—समाज शिक्षा की समस्या के वर्तमान और पुराने रूप में यही अन्तर है। हमारे पुरखों ने समाज शिक्षा की जो संस्थाएँ स्थापित कीं और जिन्हें सफलता पूर्वक चलाया, वे एक स्थिर समाज के लिए बनाई गई थीं। उनका उद्देश्य संस्कृति की रक्षा करना और उसे सजीव बनाए रखना था। आज समाज शिक्षा को उस परिवर्तनशील समाज के अनुकूल बनाना है जो एक नई सभ्यता का निर्माण कर रहा है, पुरानी चीज़ों को त्याग रहा है और जो कुछ पुराना बचा भी है, उसका रूप बदल रहा है। इस समाज को नए विचारों का प्रचार करना पड़ता है—वह विचार जो देखने में विचित्र से लगते हैं, नए गुणों की शिक्षा देनी होती है और लोगों को नई समाज व्यवस्था का ज्ञान करवाना होता है। इसे लोगों को नई पद्धतियाँ समझानी पड़ती हैं और हमारी नई सभ्यता के मूल सिद्धान्तों का प्रचार भी करना पड़ता है। सारांश में कहा जा सकता है कि अब समाज शिक्षा हमारे नए जीवन के निर्माण और इसे चलाए रखने का एक साधन बन गई है।

जनता ने देश के लिए जो राजनीतिक स्वरूप चुना है वह लोकतान्त्रिक है। लोकतन्त्र शब्द का यहाँ विस्तृत अर्थों में प्रयोग किया गया है। इस लोकतन्त्र में सत्ता प्रत्येक वयस्क पुरुष और

स्त्री के हाथ में दी गई है। मतदाताओं की संख्या और किसी देश में इतनी नहीं जितनी भारत में है। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि इस जनसंख्या में से लगभग ८० प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। हालांकि यह स्वतः सिद्ध तथ्य है कि साक्षरता का अर्थ शिक्षा नहीं है, तो भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि हमारे जनतन्त्र के अधिकतर मतदाता नागरिकों का निरक्षर होना हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए खतरनाक है। इसलिए इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि जन-साधारण को समाज शिक्षा देने की अविलम्ब आवश्यकता है। इस प्रश्न के महत्व को सरकार और जनता दोनों भली भांति समझ चुके हैं और इसके लिए दोनों बधाई के पात्र हैं।

प्रौढ़ शिक्षा क्या है? इसका अर्थ केवल प्रौढ़ों को साक्षर बनाना नहीं है—निस्सन्देह यह भी समस्या का एक पहलू है। हमें आशा है (और ऐसी आशा करना ठीक भी है) कि अनिवार्य शिक्षा योजना लागू हो जाने पर समस्या के इस पहलू का महत्व धीरे-धीरे घटता जाएगा। इस समय देश में जिन बच्चों की उम्र स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने की है, उनमें से ४० प्रतिशत से अधिक अब भी स्कूलों में जाते हैं। समस्या की व्यापकता को देखते हुए उस दिन के आने में अभी देर है जब भारत में पैदा होने वाले हर बालक के लिए आरम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध होगा, परन्तु वह दिन इतना दूर नहीं जितना कि लोग समझते हैं। परन्तु फिर भी समाज शिक्षा की समस्या तो रहेगी ही। मेरा विचार है कि वही लोग समाज शिक्षा से अधिक लाभ उठा सकते हैं, जिनको किसी न किसी प्रकार की कुछ शिक्षा पहले दी गई हो। समस्या केवल इतनी नहीं है कि हमें साक्षर लोगों को पुनः निरक्षर होने से बचाना है। यह खतरा तो हमेशा रहता ही है और समाज को इसके विरुद्ध निरन्तर प्रयास करना पड़ता है। यह खतरा मनुष्य की निर्बलता, सुस्ती, उदासीनता और अपनी दशा में सुधार करने की भावना के अभाव का चिन्ह है, समाज को इन सबके विरुद्ध संघर्ष करना पड़ता है।

शिक्षा का महत्व तभी है जब यह ज्ञान प्राप्त करने और व्यक्ति को समाज के अनुरूप बनाने का एक निरन्तर क्रम बन जाए। हमें यह न भूलना चाहिए कि स्कूल में दी जाने वाली शिक्षा बीते हुए कल का ज्ञान है और इसका महत्व केवल इतना

राजस्थान के एक गांव में ग्राम सेवक द्वारा आयोजित सभा में हरिकीर्तन

है कि यह हमारे निरन्तर शिक्षा ग्रहण करने, हमारी स्मरण-शक्ति को काम करने योग्य बनाने, हमारी बुद्धि को तथ्य अपनाने और बाहरी सहायता के बिना हमें पढ़ने और समझने योग्य साक्षरता प्रदान करने में सहायक सिद्ध होती है। यह सब ऐसी न्यूनतम बौद्धिक पूंजी है जिसका लगातार उपयोग न किया जाए तो धीरे-धीरे खत्म हो जाती है और अन्ततः बिलकुल बेकार पड़ जाती है। बहुत कम लोग ऐसे हैं (ऊँची शिक्षा प्राप्त किए हुए लोगों के लिए भी यह बात बिलकुल सच है) जो बिना किसी बाहरी सहायता के इस पूंजी को बनाए रखने में सफल होते हैं। कोई भी व्यक्ति भले ही उसकी बौद्धिक अवस्था कितनी ऊँची हो, खुद अपने बूते पर अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाने में सफल नहीं हो सकता। हममें से श्रेष्ठतम को भी अपनी शिक्षा को बनाए रखने के लिए पुस्तकालयों, बौद्धिक आदान-प्रदान और वाद-विवादों की आवश्यकता पड़ती है। फिर इन लोगों के लिए जिनको न्यूनतम शिक्षा दी गई, पुनः निरक्षरता और शिक्षा के प्रति उदासीनता से बचाने के लिए कितना परिश्रम अनिवार्य होगा, इसका अन्दाज़ा लगाना कठिन नहीं है।

इसलिए समाज शिक्षा का उद्देश्य, ऊपर से नीचे तक हर व्यक्ति को अपने मानसिक विकास, अपने को निरन्तर परिवर्तनशील सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की सुविधाएं प्रस्तुत करना है। निस्सन्देह, आजकल हमें अधिक ध्यान तो समाज के उस अंग पर देना है जो अभावग्रस्त है, क्योंकि भारत की आरम्भिक और मूल समस्या जनता का रहने-सहने का निम्न स्तर है। राष्ट्र के सामने यह समस्या है कि सामान्य व्यक्ति के बौद्धिक स्तर को कैसे ऊंचा उठाया जाए, कैसे उसे उसकी आस-पास की दुनिया का ज्ञान करवाया जाए, कैसे उसमें वातावरण और अवस्था के अनुरूप अपने को ढालने की योग्यता पैदा की जाए। यह प्रसन्नता का विषय है कि सरकार के तत्वावधान में होने वाली विभिन्न विचार-गोष्ठियों और सेमिनारों में इस प्रश्न के विभिन्न पहलुओं, स्त्रियों में व्यापक निरक्षरता की विशेष समस्याओं और सामाजिक परिवर्तनों के प्रभावों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया जा रहा है। समाज शिक्षा का एक अंग है मनोरंजन और संस्कृति सम्बन्धी कार्यक्रम। इस विषय पर भी एक विशेष सेमिनार किया गया था।

इस नए युग में हमारे नए-नए साधन भी हैं। सिनेमा, रेडियो और टेलिविज़न समाज शिक्षा में अत्यधिक सहायक हो सकते हैं। इन तीनों के फलस्वरूप सारी समस्या में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। इनके कारण शिक्षा सम्बन्धी कार्रवाईयों के प्रभाव और प्रसार में इतनी अधिक वृद्धि हुई है कि अब हम ऐसे दूरवर्ती क्षेत्रों में जहाँ पहले पहुँचना भी लगभग असम्भव था आधुनिक ज्ञान की हर बात को पहुँचा सकते हैं। विशेष तौर पर अगर सिनेमा का ठीक ढंग से उपयोग किया जाए तो लोगों के सामने उनकी समस्याओं को रख कर उनको प्रभावित किया जा सकता है और इस प्रकार उनमें सामाजिक जागरूकता पैदा की जा सकती है। मनोरंजक, सांस्कृतिक और शिक्षात्मक—तीनों प्रकार के साधनों को इस प्रकार मिलाकर प्रस्तुत किया जा सकता है कि लोगों को यह आभास भी न हो कि उनको किसी प्रकार की शिक्षा दी जा रही है। सिनेमा में कहानी सुनाने की पुरानी कला को नया रूप दिया जाता है। परन्तु कहानी के साथ-साथ लोग सिनेमा अपनी आँखों से देख सकते हैं और इस प्रकार अपनी समस्याओं के प्रति इतने जागरूक हो जाते हैं, जितने किसी और तरीके से नहीं हो सकते। परन्तु सिनेमा में निहित सम्भावनाओं का उपयोग तभी हो सकता है जब सरकार खुद इस काम को अपने हाथ में ले। निजी सिनेमा उद्योग से यह आशा करना कि वह समाज शिक्षा की ओर ध्यान देगा, कुछ अधिक है। सिनेमा उद्योगपति तो लाभ-प्रवृत्ति को लेकर ही काम करते हैं इसलिए उनके द्वारा तैयार की गई फिल्में आवश्यक नहीं कि शैक्षणिक हों। सच तो यह है कि भारत में बनाई जाने वाली फिल्मों में अधिक संख्या उनकी होती है, जिनका कोई शैक्षणिक महत्व नहीं है, और है भी तो बहुत थोड़ा। इसके विपरीत पश्चिमी फिल्में हैं जो हमारे देश में दिखाई जाती हैं। इनमें मारधाड़, गोली चलाने के करतबों और सामाजिक दुर्व्यसनों का चित्रण प्रचुर मात्रा में किया जाता है। इस सब का भी दर्शकों पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए आवश्यक है कि सरकार उन सार्वजनिक संस्थाओं के सहयोग से जिनकी इस समस्या में रुचि है, सिनेमा को समाज शिक्षा के कार्यों के लिए अपनाने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम बनाए। इस समस्या के हल करने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम बनाने और सिनेमा में निहित सम्भावनाओं का समाज शिक्षा के लिए उपयोग करने के लिए एक स्थायी परिषद् की स्थापना की जाए। इस परिषद् में सरकार के प्रतिनिधि, समाज शिक्षा विशेषज्ञ और सिनेमा-उद्योगपति हों।

जहाँ तक रेडियो का सम्बन्ध है, अधिक कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि इस पर सरकारी एकाधिपत्य है। रेडियो स्टेशनों का एक बड़ा जाल देश में बिछाया जा चुका है और लगभग प्रत्येक भाषाई क्षेत्र के लिए एक या उससे अधिक स्टेशनों की स्थापना हो चुकी है। इतना सब होने पर रेडियो से लाभ उठाना कठिन नहीं। यहाँ हमें एक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। वह यह है कि देश में रेडियो-सेट का मूल्य बहुत अधिक है। जब तक हम देश में सस्ते रेडियो सेटों का निर्माण नहीं कर सकते,

ताकि एक साधारण आदमी भी उसे खरीद सके, हम रेडियो से पूरा लाभ नहीं उठा पाएँगे। लोगों में रेडियो दिनोंदिन लोकप्रिय हो रहा है परन्तु गाँवों को रेडियो से पूरा लाभ तभी होगा जब वहाँ बिजली पहुँच जाएगी। इसमें यह बात आसानी से स्पष्ट हो जाती है कि हमारी समाज शिक्षा की प्रगति किस हद तक देश के औद्योगीकरण पर निर्भर है।

टेलिविज़न अभी भारत में शुरू नहीं हुआ है। आशा है कि आने वाले कुछ वर्षों में कम से कम शहरी क्षेत्रों में इसकी नींव रख दी जाएगी। टेलिविज़न में सिनेमा और रेडियो दोनों पद्धतियों का समन्वय है, इसलिए समाज शिक्षा के प्रसार में इससे बहुत लाभ हो सकता है।

मैं एक और बात पर ज़ोर देना चाहता हूँ। अगर हम चाहते हैं कि हमारा समाज शिक्षा कार्यक्रम सफल हो और हमारे देश के करोड़ों लोग अपनी चारों ओर की दुनिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करें तथा ज़माने की नई ज़रूरतों को समझें तो यह आवश्यक है कि उन पद्धतियों से पूरा लाभ उठाया जाए जो नए-नए आविष्कारों के फलस्वरूप हमारे सामने आती हैं। पुरानी पद्धतियों का अपना मूल्य है—वे हमारे लोगों की मनोवृत्ति से मेल खाती हैं। परन्तु उनकी सम्भावना कई गुना बढ़ जाएगी अगर हम आधुनिक पद्धतियों की अच्छाइयों को उनमें लाने की कोशिश करेंगे। रेडियो से प्रसारित की जानेवाली कथा, सैंकड़ों की बजाय हज़ारों-लाखों तक पहुँचती है। टेलिविज़न का एक नाटक या एक फिल्मी कहानी करोड़ों लोगों को प्रभावित कर सकती है। अगर हम चाहते हैं कि समस्या को राष्ट्रीय स्तर पर हल किया जाए तो समस्या की व्यापकता को देखते हुए यह आवश्यक है कि हम नए-नए तौर-तरीकों से पूरा लाभ उठाएँ।

समाज शिक्षा की समस्या को लोगों के दैनिक जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। इसे कालेजों या मन्दिरों-मठों में हल नहीं किया जा सकता। एक आवश्यक तथ्य जिसकी महत्ता को अब लोग समझने लगे हैं यह है कि समाज शिक्षा कार्यक्रम से पूरा लाभ तभी मिलता है जब यह लोगों के जीवन और रोज़गार के तरीकों से सम्बद्ध हो। श्रम स्वतः शिक्षा का एक साधन है—अगर श्रम को इस तरह सुव्यवस्थित किया जाए कि उसमें एक सामाजिक उद्देश्य हो, तो उससे भी ऊँची किस्म की समाज शिक्षा दी जा सकती है। सामुदायिक योजना-क्षेत्रों और राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम, श्रमिक संघों और सहकारिता आन्दोलनों के महत्व को यह बात सामने रख कर जाना जा सकता है। भारत में समाज शिक्षा के विस्तार के लिए सबसे महत्वपूर्ण काम सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत हो रहा है। अब तक लगभग एक लाख गाँव कार्यक्रम के अन्तर्गत आ चुके हैं। इन योजना-क्षेत्रों के फलस्वरूप देहात में नए विचारों, नई पद्धतियों और नई मर्यादाओं का प्रचार हो रहा है। यह कार्यक्रम लोगों में इस ढंग से मानसिक परिवर्तन कर रहा है, जिस प्रकार समाज शिक्षा का और कोई साधन नहीं कर सकता। इसी प्रकार शहरी श्रमिकों के लिए श्रमिक संघ आन्दोलन भी काफी शैक्षणिक महत्व रखता है। इन दोनों आन्दोलनों द्वारा समाज शिक्षा का बहुत सुधार हो रहा है। वह दिन दूर नहीं जब इनके फलस्वरूप हमारी जनता अपनी चिर-निद्रा त्याग कर समाज की बदलती हुई अवस्था के प्रति जागरूक हो जाएगी।

★

आरोग्य नियम

हमेशा शुद्ध विचार करो और तमाम गन्दे व निकम्मे विचारों को मन से निकाल दो।

दिन-रात ताज़ा-से-ताज़ा हवा का सेवन करो।

शरीर और मन के काम का तौल बनाए रखो, यानी दोनों को बेमेल न होने दो।

तनकर खड़े रहो, तनकर बैठो और अपने हर काम में साफ़ और सुथरे रहो, और इन सब आदतों को अपनी आन्तरिक स्वस्थता का प्रतिबिम्ब बनने दो।

खाना इसलिए खाओ कि अपने-जैसे मानव-बंधुओं की सेवा के लिए ही जिया जा सके। भोग भोगने के लिए जीने और खाने का विचार छोड़ दो। अतएव उतना ही खाओ, जितने से आपका मन और आपका शरीर अच्छी हालत में रहे; और ठीक-से काम कर सके। आदमी जैसा खाना खाता है, वैसा ही बन जाता है।

—महात्मा गान्धी

बड़ा परिवार एक बोझ

सावित्रीदेवी वर्मा

ज्ञानवती जब १२-१३ वर्ष की थी, उसका ब्याह कर दिया गया। उसके ससुर ठेकेदार थे। जब ज्ञान की शादी हुई उसके पति की आयु १७ वर्ष की थी। दसवीं पास करके वह भी अपने पिता के साथ काम में हाथ बटाने लगा था। ज्ञानवती की बड़ी इच्छा थी कि वह आगे पढ़े। उसकी मौसी की लड़की रमा और उसने साथ ही साथ मिडिल पास किया। उसी गर्मियों की छुट्टियों में ज्ञान की शादी पक्की हो गई। शादी पर ज्ञान की मौसी सीता भी आई। ज्ञान की माँ श्यामा ने अपनी बहन से कहा—"क्यों बहन, क्या रमा के लिए कोई लड़का नहीं देखा? वह भी तो ज्ञान की उम्र की है। यही दो चार महीने छोटी होगी। पर कद-काठी तो उससे ऊँची ही है। इस साल ब्याह नहीं हुआ तो फिर दो साल तक ब्याह का कोई मूहूर्त हो नहीं है। जवान लड़की घर में कब तक बिठाए रखोगी?"

सीता बोली—"जीजी, रमा के पिता जी के विचार कुछ और हैं। उनका विचार है कि बच्चों की छोटी उम्र में शादी नहीं करनी चाहिए। देश में बेहिसाब आबादी बढ़ रही है। छोटी उम्र में माँ बनकर लड़कियों की तन्दुरुस्ती खराब हो जाती है। अब तुम अपनी ननद को ही देख लो ३० वर्ष की उम्र है। सात बच्चों की माँ बन गई। सारी काया टूट गई। भला उसने क्या सुख देखा गृहस्थी का? दिन-रात बच्चों की चिन्ता में ही घुली जाए है। न अपने खाने का होश रहा न पहनने का।"

श्यामा ने कहा—"भला बच्चे भी किसी को बुरे लगते हैं। दुनिया में कहावत है कि सबसे मीठा फल कौन-सा? औलाद। देख लेना जिस दिन मेरी ननद के ये सातों बच्चे बड़े हो जाएँगे, बहू, दामाद, नाती, पोतों से घर भर जाएगा। चार बेटे हैं, कमा कर लाएँगे। माँ की झोली भर देंगे!"

सीता हँस कर बोली—"इंसान आशा तो बहुत कुछ करता है पर बिना कोशिश के सुख नहीं मिलता। फिलहाल तो बच्चों को ठीक से पालने और पढ़ाने-लिखाने का सवाल ही हल नहीं हो पा रहा। यदि बच्चों की बेपरवाही होगी तो वे भला तन्दुरुस्त और योग्य कैसे बन सकते हैं?"

श्यामा ने पापड़ बेलते हुए कहा—"मेरा तो ऐसा विचार है कि लड़कियों की शादी १३-१४ वर्ष की आयु के अन्दर कर देनी चाहिए। ज़माना बड़ा खराब आ गया है। अब लड़के-लड़कियों को कुछ शर्म तो रही नहीं, बड़े हो कर वे माँ-बाप के सामने बोलने लगते हैं। सौ शर्तें लगाते हैं कि हम पसन्द की शादी करेंगे। लड़की पढ़ी-लिखी हो, सयानी उम्र की हो, समझदार हो, हमें दहेज़ नहीं चाहिए, अच्छी लड़की चाहिए। भला बहन, ऐसी बहू घर में कौन लाना पसन्द करेगा जो चार बच्चों की उम्र काँख में मार कर आए। फिर बड़ी उम्र की लड़की सास का डर नहीं मानती, उनकी सौ फरमाईशें होती हैं। लड़के को अपनी उँगलियों पर नचाती हैं।"

सीता को अपने बहन के विचार कुछ अजीब से लगे। वह सोचने लगी—ज़माना करवट बदल रहा है पर जीजी के विचार वही पुराने हैं। उसने बहन को समझाने के विचार से कहा—"जीजी, अब पुरानी बातें गईं। औरतें कोई गाय-भैंस नहीं हैं, जिसके हाथ में रस्सी पकड़ा दी उसके पीछे चुपचाप चल दीं। शादी ज़िन्दगी भर का सौदा है। यह मनपसन्द से ही होना चाहिए। इसमें मुझे तो कोई बुराई दीखती नहीं। बहू को डरा धमका कर रखने का सवाल ही नहीं उठता। सास-बहू में माँ-बेटी का सा सम्बन्ध होना चाहिए। जब सास बहू को सताती है, तब अधिकार पाकर बहू भी बदला लेने से नहीं चूकती।"

श्यामा ने चिढ़कर कहा—"दिखता है तू रमा को सिर पर चढ़ा कर बिगाड़ देगी। तेरी ऐसी बातों का उस पर बहुत बुरा असर पड़ेगा। वह ससुराल जाकर अपनी सास से ज़रूर लड़ेगी। तूने उसे पढ़ा-लिखा कर खराब कर दिया। जब बड़ी हो जाएगी तो दस नखरे करेगी। वह बी० ए० पास होकर, विलायत पास दूल्हा माँगेगी। जानती हो, विलायत पास दूल्हे की कीमत ३० हज़ार रुपए से कम नहीं है। मैं…"

सीता ने बीच में ही टोक कर कहा—"जीजी, तुम्हारी तरह हमारे यहाँ ठेकेदारी तो है नहीं। हम तो ग़रीब लोग हैं। रमा के पिता को कुल २५०) तनख्वाह मिलती है। इससे भला हज़ारों का दहेज़ कहाँ से दिया जाए? लड़की को पढ़ा-लिखा देंगे। पढ़े-लिखे लड़के से शादी कर देंगे। दोनों मिलकर कमा खा लेंगे।"

श्यामा ने हैरानी से कहा—"सीता! दिखता है तेरी तो अक्ल ही फिर गई है। लड़की कमाएगी कि घर-गृहस्थी सँभालेगी? बाल-बच्चे उसके कौन पालेगा, तू?"

सीता ने हँसकर कहा—"जीजी, अभी तो दिल्ली दूर है। जबकी जब देखी जाएगी।"

श्यामा ने आँचल पीठ पर डालते हुए कहा—"तेरे ढंग तू ही जाने।"

इस बात को आज १५ वर्ष बीत गए। रमा के लड़के का मुंडन है। ज्ञानवती सपरिवार आई हुई है। इस १५ वर्ष में ज्ञानवती दस बच्चों की माँ बन गई है। एक बच्चा सौर में ही मर गया। चौथा बच्चा दो वर्ष का होकर दिवाली वाले रोज़ पटाखों से जल कर मर गया। तीसरी लड़की को बचपन में लकवा मार गया। ठीक से इलाज न होने के कारण उसका एक पाँव मारा गया, वह लँगड़ा-लँगड़ा कर चलती है। ज्ञानवती ने देखा रमा उसी की उम्र की है, पर ऐसी मालूम होती है मानो खिला हुआ गुलाब का फूल। जब कि ज्ञानवती के गाल पिचक गए हैं, बाल खिचड़ी हो गए हैं। ज्ञान को आज पन्द्रह वर्ष पहले की कही हुई अपनी मौसी जी की बात याद आई। वह सोचने लगी—'बचपन में ब्याह हो जाने के कारण सचमुच में मेरी ज़िन्दगी बिगड़ गई। यदि मैं भी पढ़ती रहती तो आज बी० ए० पास होती। देखो रमा को कितनी खुशी है। रमा और रमा का पति मनोहर दोनों ही स्कूल में काम करते हैं, तीन सौ रुपया कमा लेते हैं। एक बच्चा है, कैसा प्यारा और होनहार। हमेशा साफ़-सुथरा और हँसता रहता है। एक हमारे बच्चे हैं, मानो शैतान की खाल ओढ़ कर पैदा हुए हैं। इनके मारे चौबीस घण्टे जान परेशान रहती है। सारे दिन घर सिर पर उठाए रखते हैं। अड़ौस-पड़ौस से लड़ते हैं। कोई बच्चा भी ढंग का नहीं निकला। बड़ी लड़की हमेशा डरी सहमी-सी रहती है। बच्चों को सँभालने में हाथ बटाने के लिए उसकी भी पढ़ाई बन्द करवानी पड़ी। बड़ा लड़का सातवीं में तीन बार फेल हुआ, बाप को अपने काम से फ़ुरसत नहीं। बच्चों की पढ़ाई की देखभाल ठीक से न होने के कारण वे नियम से स्कूल ही नहीं जाते। बड़े लड़के ने तो बस दो बातें सीखी हैं, बाल बनाने और सिनेमा के गीत गाने। उससे छोटा लड़का कुछ है भी कूढ़ मगज़, आज १२ वर्ष का हो गया, तीसरी कक्षा ही में दो बार फेल हुआ है। उसकी पीठ की लड़की पाँव से लँगड़ी है। उसे पढ़ने का बड़ा शौक है, पर लँगड़ी को स्कूल भेजने की फ़िक्र किसे है। कीड़े-मकोड़ों सरीखे बच्चे न हुए होते तो अच्छा था। लोग कहते हैं बच्चे बहुत प्यारे लगते हैं। मुझे तो इनको देखकर क्रोध उठता है। जब परेशान करते हैं तो ऐसा जी करता है कि सब के सब मर जाएँ तो अच्छा है। ब्याह करके क्या सुख पाया। छोटी उम्र में बच्चे होने शुरू हो गए।'

ज्ञानवती इन्हीं बातों को सोच रही थी कि रमा काम से निबट कर दूध का एक गिलास लेकर आई—"लो बहन, दूध पी लो। गोद के बच्चे को दूध ठीक से उतरेगा।"

ज्ञानवती की आँखों में आँसू आ गए। बोली—"बहन, आज तेरे घर दूध पी लूँगी, दो दिन आराम कर लूँगी, फिर तो उसी नरक में जाना है। क्यों आदतें बिगाड़ रही हो?"

रमा बोली—"तुम्हारे घर किस बात की कमी है। भैंस है, ठेकेदारी में अच्छी कमाई है। फिर तुम आराम से क्यों नहीं रहतीं? तुमने तो अपनी दुर्दशा आप कर रखी है।"

ज्ञान–"बहन, घर में सब कुछ है पर एक हो तो खीरखाँड से मुँह भरा जाए। इतने बच्चे हैं और कमानेवाला एक। सबकी ज़रूरत ही पूरी नहीं हो पाती। तुम्हारी माँ ठीक कहती थीं कि अधिक औलाद गरीबी की निशानी है। काश! कि हमें भी यह अक्ल होती कि छोटे परिवार से क्या लाभ होते हैं। भेड़-बकरी सरीखे बच्चे होने से माँ की तो काया टूट जाती है और बच्चों से प्यार भी नहीं रहता।"

रमा ने कहा—"हाँ इसमें तो कोई शक नहीं कि यदि घर में दो-चार बच्चे ही हों तो उनकी सार-सँभाल ठीक से हो सकती है। जो खर्चा दो-चार बच्चों पर ठीक से हो सकता है उसी को यदि आठ-दस पर करना पड़े तो किसी भी बच्चे की ज़रूरतें ठीक से पूरी नहीं हो पातीं। देखो गाँव में स्त्रियों के प्रौढ़ावस्था में ही मुँह पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। तीस वर्ष में वह ऐसी लगने लगती हैं मानो ७० वर्ष की बुढ़िया हों। फिर इस समय इस बात की बड़ी जरूरत है कि देश की नस्ल सुधरे। यदि आबादी इसी तरह बढ़ती रही तो देश में खाने-पीने को अनाज और रहने को जगह नहीं मिलेगी। इसलिए सरकार परिवार-नियोजन पर बहुत ज़ोर दे रही है। अब हमारी पंचवर्षीय योजना में गाँव-गाँव महिला कल्याण केन्द्र खुलने वाले हैं। स्त्रियों को उसका पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। साथ ही इस बात की भी ज़रूरत है कि लड़के और लड़कियों का ब्याह सयानी उम्र में किया जाए ताकि छोटी उम्र में उन पर माँ-बाप बनने की जिम्मेदारियाँ न आ पड़ें।"

ज्ञानवती ने बच्चे को थपकते हुए कहा—"बहन, कहती तो सच हो। यदि मुझे भी तुम्हारी तरह पढ़ने का मौका मिलता और सयानी उम्र में मेरा ब्याह हुआ होता तो आज मेरी ज़िन्दगी की कहानी ही दूसरी होती।"

प्रोजैक्ट आफ़िसर को दावत—[पृष्ठ १४ का शेषांश]

दिनरात ओवरसियर, इंजीनियर और टाइमकीपर लगे रहे। हम लोग कहते थे साहब खाना खालो, फिर काम करना, तो जवाब देते थे कि एक स्लैब और डाल दें, फिर खायेंगे। इतनी जल्दी नहीं करते, तो क्या दो साल में सड़क खतम होती। प्रोजैक्ट आफ़िसर कहते थे कि ३० मील की पक्की सड़क दूसरे ब्लाकों में भी बनाई गई है।"

भुजंगराव से, जो इस समय चूल्हे के पास खड़ा खीर चला रहा था, न रहा गया और उसने पूछा—"पुरानी बातें छोड़ दो और यह बताओ कि जब विकास-योजना बन्द हो जावेगी, तब क्या होगा। यदि काम की रफ्तार को जारी न रखा गया तब जो कुछ भी किया गया है, सब चौपट हो जावेगा। हम लोगों में अभी इतनी जागृति नहीं आई है कि हम अब सब काम अपने हाथ में ले लें। सरकार की मदद की हमेशा ज़रूरत पड़ेगी। प्रोजैक्ट आफ़िसर एक बार कह रहे थे कि भुजंगराव ये सब सड़क, तालाब, स्कूल व कुएँ बनवाना उतना महत्व का नहीं है जितना कि लोगों को सदियों की गुलामी की नींद से जगाना। उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना है और उनमें आगे बढ़ने की प्रेरणा उत्पन्न करनी है। मैंने सीधे जवाब दिया कि सबसे अच्छा असर पड़ेगा रचनात्मक काम करके उनकी ओर लोगों की शक्ति को आकर्षित करके। लेक्चर देने से कुछ नहीं होता। सरकार अपनी है। रचनात्मक कार्य करें, हम अभी आगे बढ़ने के लिए तैयार हैं, पर यदि यह कोई चाहे कि हम अपने आप सब कर लें, तो यह मौजूदा हालत में असम्भव है। अभी सरकार का यह फ़र्ज़ है कि वह हमारे उत्साह को पनपावे और पाँच-दस साल बाद जब हम अपने पैरों पर खड़े हो जाना सीख जावेंगे, तब अवश्य सरकार सारी ज़िम्मेदारी हम पर छोड़ सकती है।"

भुजंगराव की बात सबको जँची। यशवंतराव पाटील ने चूना तम्बाकू मलते हुए कहा—"अच्छा प्रोजैक्ट आफ़िसर को आने दो, उनसे सारा खुलासा मिलेगा।"

लगभग साढ़े आठ बजे प्रोजैक्ट आफ़िसर आए। तब तक पूरा खाना तैयार हो चुका था, दरी बिछ गई थी और पेट्रोमेक्स जल रहे थे। जैसे ही प्रोजैक्ट आफ़िसर गद्दे पर बैठे, वैसे ही एक पेट्रोमेक्स भभक उठा। विट्ठलराव, जो कालेज की छुट्टी पर घर आया था, दौड़ा और उसने पेट्रोमेक्स से हवा निकाल दी। वह उसे फिर से जलाने की कोशिश कर रहा था। उसने अँग्रेज़ी में प्रोजैक्ट आफ़िसर से पूछा—"गाँव में बिजली कब आने वाली है? सड़क बन गई, स्कूल की बड़ी इमारत भी बन गई, कुएँ में पम्प लगाकर दो नल भी लगा दिए गए। यदि बिजली आ जाती तो सिंचाई की बड़ी सुविधा हो जाती। रोशनी की तो उतनी फ़िक्र नहीं है।"

प्रोजैक्ट आफिसर की आदत थी कि पहले वे गाँववालों के बारे में कोई मजेदार बात कह कर उन्हें खुद अपने ऊपर कुछ हँसाते थे। उन्होंने कहा—"भाई! सबसे बड़ा फ़ायदा सड़क बनाने का यह दीखता है कि गाँव के लोगों को शौच इत्यादि करने की सुविधा हो गई। सुबह और शाम के समय सड़क से जाइये, तो बस यही नज़ारा दिखता है। लाख बार कहा कि 'ट्रेंच लैट्रिन' बनाओ पर कोई सुनता ही नहीं। गांव की सफ़ाई के मामले में तो विकास-योजना की हार हुई।"

विट्ठलराव ने प्रोजैक्ट आफिसर की बात का समर्थन किया और कहा—"मैं भी जब शहर से आता हूँ, इन लोगों से यही कहता हूँ, पर कोई नहीं सुनता। मैं तो उस गाँव की लड़की लाऊँगा ही नहीं जहाँ के लोग सड़क पर लाईन लगाकर बैठते हैं। खैर, यह उम्मीद की जा सकती है कि जब सड़क पर बिजली लग जावेगी, तब शायद रोशनी में लोगों को शर्म आए और वे सड़क पर बैठना छोड़ दें।"

प्रोजैक्ट आफिसर ने हँसते हुए कहा,—"अरे भाई कुछ नहीं कह सकते। मामला उतना सीधा नहीं है। अभी तो लोग केवल लोटा लेकर आते हैं, फिर साथ में कहीं किताब और अख़बार लेकर न आवें।"

पूरा पंचायत घर हँसी से गूँज उठा।

प्रगति के पथ पर

कृषि गवेषणा को प्रोत्साहन

पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में कृषि गवेषणा को बहुत प्रोत्साहन मिला। इसका परिणाम यह हुआ कि खाद्य वस्तुओं के मामले में देश काफी हद तक आत्म-निर्भर हो गया है। दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में अन्न के उत्पादन में १५ प्रतिशत वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है। कृषि गवेषणा के लिए १४ करोड़ ५० लाख रुपए की व्यवस्था की गई है। इसके लिए राज्य सरकारों तथा कृषि अनुसंधान परिषद ने भी काफी धन की व्यवस्था की है। धान की एक नई किस्म की खोज की गई है जिसकी पैदावार दूसरी किस्मों के धान से अधिक होती है। गेहूँ की भी एक ऐसी किस्म खोज निकाली गई है जिसे फ़सलों को होने वाली बीमारियाँ नहीं लगतीं। देश के बँटवारे के समय भारत में २६ लाख गाँठ कपास पैदा होती थी। लेकिन १६५४-५५ में ४२ लाख गाँठ कपास पैदा हुई। पहली पंचवर्षीय योजना में इतनी ही कपास उपजाने का लक्ष्य रखा गया था। भाखड़ा-नंगल तथा अन्य सिंचाई योजनाओं के पूरा हो जाने के बाद कपास की उपज और बढ़ जाएगी। कोयम्बतूर में गन्ने की जिस नई किस्म की खोज की गई थी, आज कल ६० प्रतिशत भूमि में उसी की खेती की जा रही है।

उत्तर-पूर्व सीमान्त अभिकरण में सामुदायिक विकास कार्यक्रम

उत्तर-पूर्व सीमान्त अभिकरण की सामुदायिक विकास सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिए, पहली गोष्ठी मार्च के महीने में सिआंग सीमान्त डिवीज़न के पासीघाट में हुई। इस अभिकरण में परिस्थितियाँ अन्य राज्यों से भिन्न है, अतः इनको ध्यान में रखकर ही वहाँ की विकास समस्याओं को हल करना है। इस गोष्ठी में अभिकरण के सभी डिवीज़नों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। आदिवासी प्रतिनिधियों ने विचार-विमर्श में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उत्तर-पूर्व सीमान्त अभिकरण में इस समय ६ विकास खण्ड हैं—सिआंग सीमान्त डिवीज़न में पासीघाट विकास खण्ड, तिराप सीमान्त डिवीज़न में नामसांग और वांचू विकास खण्ड, सुबनसीरी सीमान्त डिवीज़न में जीरो और दपोरीजो विकास खण्ड, और तुएनसांग सीमान्त डिवीज़न में नोक्सान विकास खण्ड। इन विकास खण्डों में कुल १ हजार वर्गमील क्षेत्र पड़ता है। इसमें २०६ गाँव हैं, जिनकी आबादी ६१,४३२ है।

दूसरे विकास कार्यों में भी बराबर प्रगति हो रही है। छोटे उद्योगों के प्रशिक्षण केन्द्रों में आदिवासी लड़के-लड़कियों को शिक्षा तो दी ही जाती है, इनसे अब दूसरे लाभ भी होने लगे हैं। बोमडीला केन्द्र से पुनर्विक्रय योजनाओं के लिए ४०० रुपए का सामान खरीदा गया और तिराप सीमान्त डिवीज़न की कपड़े की आवश्यकता इन्हीं केन्द्रों से पूरी होने लगी है। अलोंग केन्द्र में शिक्षा पाए हुए दो बढ़ई तुलिंग में मकान बनाने में मदद कर रहे हैं। दो व्यक्तियों ने, जिन्हें चित्रकारी और दरी बनाने की शिक्षा दी गई थी, अब बोमडिला में अपना रोज़गार शुरू कर दिया है। हाल में, इन केन्द्रों में ८२ शिक्षार्थी भर्ती हुए हैं। अभिकरण के स्कूलों के छात्र अपनी परीक्षाओं में अच्छे नम्बरों से पास हो रहे हैं। पासीघाट अस्पताल में १४ रोगी शैयाओं का तपेदिक वार्ड खोला गया है। अलांग में आलू की फसल अच्छी हुई है और इसलिए अब वहाँ हवाई जहाज से आलू गिराने की आवश्यकता नहीं रही है। इस साल यहाँ ३ हजार रुपए की तरकारियाँ पैदा की गई। कमेंग में १७५ एकड़ जमीन का और सिआंग डिवीज़न में १४६ एकड़ ज़मीन का सुधार किया गया।

सहकारिता का विस्तार

किसानों की दशा सुधारने और समाजवादी व्यवस्था के प्रिय स्वप्न को साकार करने का एकमात्र लोकतन्त्रात्मक ढंग है—सहकारिता का विस्तार। इसलिए ऋण एवं हाट-व्यवस्था में ही नहीं, बल्कि खेती, दुग्धशाला संचालन, मुर्गी-पालन और अन्य घरेलू उद्योगों में भी सहकारी ढंग से कार्य करना आवश्यक है। पिछले ५० वर्ष में सहकारी आन्दोलन ग्रामीणों की ऋण की आवश्यकताओं का केवल तीन प्रतिशत भाग उपलब्ध कर सका है। अधिकतर ऋण साहूकारों, व्यापारियों और अन्य निजी साधनों से मिलते हैं। साहूकार अक्सर कोई बड़ा ज़मींदार, आढ़तिया या व्यापारी होता है, जिसकी दिलचस्पी केवल मूलधन पर गहरा ब्याज वसूल करने तक ही सीमित नहीं रहती। उसकी आँख किसान की ज़मीन और फ़सल पर भी लगी रहती है। सहकारी आन्दोलन से गाँववालों को जो थोड़ा बहुत लाभ होता भी है, वह भी बड़े किसानों को ही मिल पाता है, क्योंकि वे कर्ज लेने के लिए अपनी ज़मीनों को ज़मानत के तौर पर पेश कर सकते हैं।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में सहकारिता से २ अरब २५ करोड़ रुपए की पूंजी खड़ी करने का उच्चाकांक्षी कार्यक्रम बनाया गया है। सन् १९६०-६१ में जितनी राशि की आवश्यकता पड़ेगी, यह रकम उसकी २५ से ३० प्रतिशत होगी। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए सहकारिता आंदोलन को स्वयं किसानों का और सहकारी संगठनों, जैसे राज्य सरकार, भारत सरकार और रिज़र्व बैंक आदि का सहयोग प्राप्त करने के लिए तेजी से प्रगति करनी होगी।

किसानों को ऋण मिलने की तो कुछ सुविधा थी भी परन्तु हाट-व्यवस्था के मामले में उनकी बिलकुल नहीं चलती थी। वे जो कुछ उगाते थे उसे उपभोक्ताओं तक पहुँचने से पहले कई बिचौलियों के हाथों से निकलना पड़ता था। इसलिए किसानों को जो मूल्य मिलता था, वह उस मूल्य से बहुत कम रहता था, जो उपभोक्ता अदा करते थे। हाट-व्यवस्था की इस अस्त-व्यस्त स्थिति का एक बहुत बड़ा दुष्परिणाम यह होता है कि कम अवधि या लम्बी अवधि से क्रय विक्रय में भावों में बहुत तेजी से उतार-चढ़ाव होता रहता है और एक ही समय में विभिन्न क्षेत्रों में एक ही वस्तु के भावों में बहुत अन्तर रहता है। इस समस्या को हल करने के लिए सरकार ने मूल्यों को स्थिर रखने का कार्यक्रम बनाया है, परन्तु इस मामले का अधिक उत्तम और स्थायी हल यह होगा कि उत्पादन और हाट व्यवस्था को इस ढंग से संगठित किया जाए ताकि बीच के मुनाफाखोर खत्म हो जाएँ और खरीदारों और विक्रेताओं से सीधा सम्पर्क बने।

यही सहकारिता विकास-योजना का लक्ष्य है। इस योजना के अनुसार लोग मिल-जुलकर कार्य करेंगे और ऋण, उत्पादन किसानों के लिए आवश्यक वस्तुओं की खरीदारी और खेती की उपज के विक्रय की हालतें सुधारने में मदद करेंगे।

गाँव का होनहार कलाकार

भारत की एकता का निर्माण

(सरदार वल्लभ भाई पटेल)

भारत की एकता के निर्माता सरदार [illegible] भाषणों का [illegible] प्रकाशित हुआ है।

[illegible]

मूल्य : सजिल्द ५) रुपया

प्रकाशक

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,

ओल्ड सेक्रेटेरियट,

दिल्ली-८

Printed by the Albion Press, Kashmere Gate Delhi-6, and published on behalf of Community Projects Administration by the Publications Division, Delhi-8.